UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186765
UNIVERSAL
LIBRARY

-28-4-81—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

H 200
A 27D

Accession No. G·H·55

अग्रवाल, हरिकिशनदास
धर्म निरपेक्ष धर्म

k should be returned on or before the date last marked below

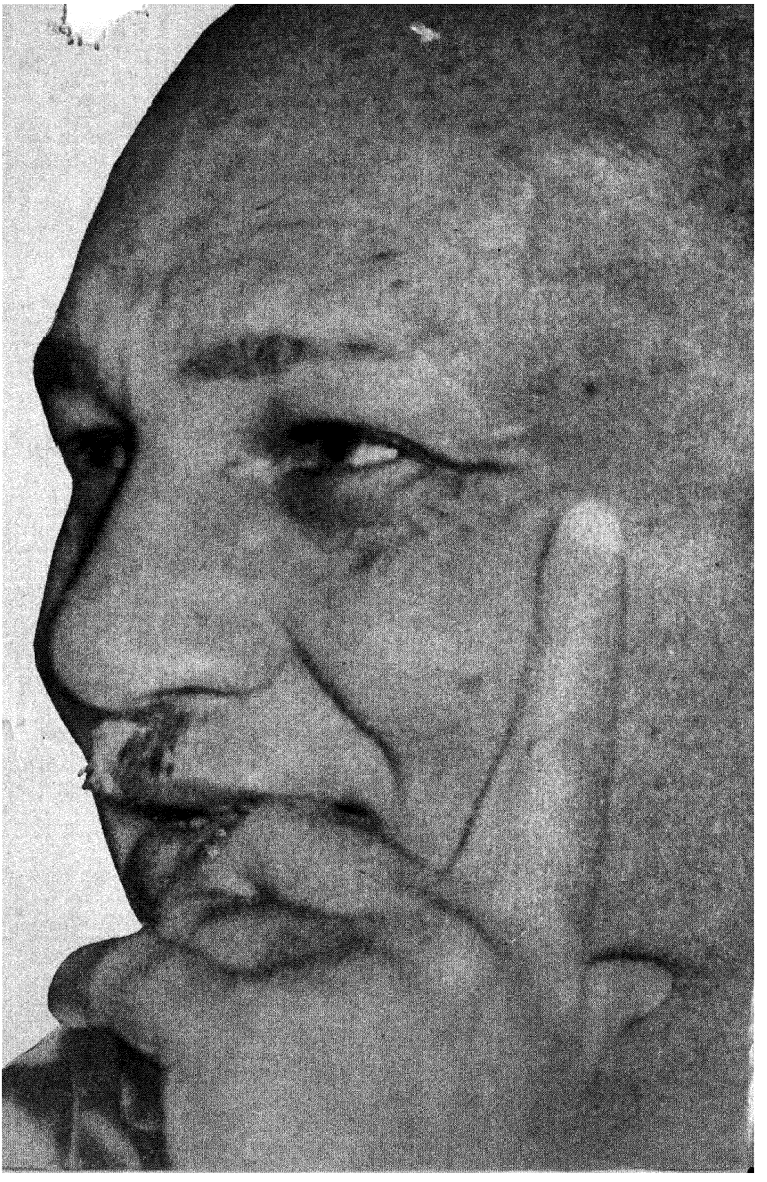

धर्म निरपेक्ष धर्म

अग्रवाल जी की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

१.	**मुमुक्षु** (उपन्यास) : द्वितीय संस्करण	रु ५–००
२.	**सजगता** (सशोधित एव परिवर्द्धित द्वितीय सस्करण)	२–००
३.	**बात बात में बात** (उपन्यास)	३–००
४.	**खेती और परमात्मा**	८–००
५.	**जीवन दक्षता**	८–००
६.	**जीवन-प्रदीप**	८–००
७.	**खेल-कूद में वेदान्त**	३–००
८.	**विज्ञान और अध्यात्म**	४–००

धर्म निरपेक्ष धर्म

हरिकिशनदास अग्रवाल

प्रकाशक :

तुलसी मानस प्रकाशन,
गुप्ता मिल्स इस्टेट,
रे रोड, बंबई-४०००१०

मूल्य :

पांच रुपये मात्र

मुद्रक :

श्री क. ला. मुनोत, एम. ए.
प्रभात प्रिन्टिग वर्क्स
४२७ गुलटेकडी, पूना ४११००९

GHS

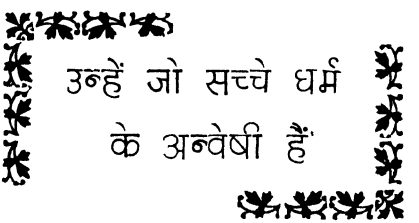
उन्हें जो सच्चे धर्म
के अन्वेषी हैं

आमुख

महाभारत के शान्तिपर्व में शरशय्या पर पड़े पितामह भीष्म से युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि धर्म का मूल तत्त्व क्या है ? भीष्म ने इसके उत्तर में महर्षि जाजलि एवं वैश्य तुलाधार की कथा सुनायी ।

एक बार अपने कठोर तप पर गर्व करते हुए जाजलि के मुख से निकला— मैने धर्म को प्राप्त कर लिया । इस पर जाजलि को आकाशवाणी सुनायी पड़ी— ऐ जाजलि, अपने धर्माचरण में तुम वैश्य तुलाधार के समान नहीं हो । यह सुनकर जाजलि बडे दुखी हुए और तुलाधार से मिलने काशी पहुंचे ।

उस बनिये से जाजलि ने पूछा—तुम खरीद-बिक्री में ही सदा व्यस्त दिखाई दे रहे हो । फिर तुमने धर्म के मूल तत्त्व को जान लेने जैसा ज्ञान कैसे हासिल कर लिया?

तुलाधार ने उत्तर दिया–मैं अपने व्यापारिक कार्यों में कभी झूठ, हिसा और लोभ का सहारा नही लेता। मैं मादक वस्तु नतीं बेचता। मैं हमेशा विचार, वाणी और कर्म से दूसरों का भला करने में लगा रहता हूँ। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति मेरी समान दृष्टि है। यही वह तुला है जो आप मेरे हाथ में देख रहे है। मैं अपने प्रत्येक विचार और अनुभूति को सचाई की तुला पर ही तोलता हूँ।

वैश्य ने कहा कि मै उसी प्रकार असंपृक्त रहता हूं जिस प्रकार बादलों के मध्य आकाश। मैं किसी की न प्रशंसा करता हूं न निन्दा। मैं मिट्टी, पत्थर और सोने के टुकड़ों को समान मूल्य का समझता हूं। हिंसा, घृणा और ईर्ष्या की अभिव्यक्तियों के प्रति मै बधिर हूं। हे ऋषि, जो आत्म-नियन्त्रित है और सत्पुरुषों का अनुकरण करता है वही धर्म के मूल तत्त्व के रहस्यों को प्राप्त करता है। धर्म वह है जो मनुष्य को मोक्ष की ओर ले जाता है। दूसरों का अंध अनुकरण नहीं करना चाहिये। जो मेरा वध करने पर तत्पर है और जो मेरे सुकृत्यों की प्रशंसा करता है—मै दोनों के प्रति समदृष्टि रखता हूं। सम और विषम, अच्छे और बुरे दोनों ही से स्वतंत्रता प्राप्त करना ही धर्म का सार है।

तुलाधार द्वारा निरूपित धर्म से किस धर्म का मतभेद हो सकता है? धर्म के मूल स्वरूप में न जा कर उसके बाह्याडंबरों और प्रतीकों तक ही जिनकी दृष्टि सीमित होती है उन्हें धर्मों मे भेद दिखायी देते हैं। वस्तुतः धर्म दृष्टि को बांधते नहीं। वह तो स्वतंत्रता की ओर प्रेरित करते है — जिस स्वतंत्रता की बात ऊपर कही गयी। वह स्वतंत्रता क्या है – इसकी थोड़ी और चर्चा समीचीन होगी।

एक बार स्वामी रामतीर्थ से किसी ने प्रश्न किया– आप किस मजहब के है? हिन्दू? मुसलमान? ईसाई या यहूदी? आप किस जाति, धर्म या सम्प्रदाय से ताल्लुक रखते है?

स्वामी रामतीर्थ ने विलक्षण उत्तर दिया– यदि कोई चीज किसी की होती है, तो वह उसकी सम्पत्ति होती है। किसी निर्जीव वस्तु अथवा जानवर

पर किसी व्यक्ति का अधिकार होता है। वे चीजें उस मनुष्य की सम्पत्ति स्वीकार की जाती हैं। क्या राम (रामतीर्थ) कोई निर्जीव वस्तु है ? राम सम्पत्ति की भांति किसी की चीज नहीं। वह जानवर नहीं। फिर किसी का (किसी धर्म या सम्प्रदाय-विशेष का) किस प्रकार हो सकता है ? राम आपकी अपनी आत्मा है।

स्वामी राम ने कहा कि भविष्य में एक ही धर्म होगा जो मानव जाति की सेवा करेगा और उस धर्म का कोई नाम नहीं होगा। सच्चा धर्म हमें मुक्त बनाने के लिये होता है, न कि बधन में बांधने के लिये। ईसामसीहों, बुद्धों, मुहम्मदों या रामों से ऊपर उठ जाओ। 'मैं' के वास्तविक स्वरूप को जानकर स्वतंत्र हो जाओ। हर एक नाम से ऊपर उठकर उन्मुक्त हो जाओ।

वास्तविक धर्म इसी स्वतंत्रता की दृष्टि प्रदान करता है और इस स्वतंत्रता को पाये बिना विश्वात्मा को – परम तत्व को – नही जाना जा सकता, जो कि सभी धर्मो का मूल उद्देश्य है।

धर्म के इसी वास्तविक स्वरूप की झलकमात्र देने के लिये प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन हुआ है। धर्मों की भिन्नता इतिहास और संस्कृति की नितान्त भिन्न-भिन्न विशेष स्थितियों से उत्पन्न आवश्यकताओं के ही कारण दिखायी देती है। किन्तु धर्म के सब मार्गो का अन्तिम धाम एक ही है। ईश्वर के समत्व को न मानना ईश्वर को न मानने के समान है। सबकी पूजा एक ही परमेश्वर को पहुंचती है और वही सबको फल देता है। धर्म तो उसी परमेश्वर की ओर बढ़ने के लिये एक सोपान है।

यही प्रस्तुत पुस्तक का भी प्रतिपाद्य है। इसीलिये इसके द्वितीय खण्ड (संसार के मुख्य धर्म) में संसार के सभी प्रमुख धर्मों की मुख्य बातों की जानकारी देने के उद्देश्य से उनके गहन दार्शनिक ऊहापोह में न भटका कर उनकी साररूप से प्रस्तुति की गयी है और यह प्रतिपादित करने की कोशिश की गयी है कि वस्तुतः संसार के विभिन्न धर्मों में कोई तात्त्विक भेद नहीं। प्रथम खण्ड (धर्म का व्यापक स्वरूप) में प्रस्तुत निबंधों में इसी तथ्य की विशद विवेचना की गयी है।

मनुष्य जितना ही अपने सुख के साधन इकट्ठे करता है, उतना ही खुद को असहाय एवं अकिंचन अनुभव करता है। वह अपने इर्दगिर्द जितनी ही भीड़ जुटाता है, उतना ही खुद को अकेला महसूस करता है। विद्युत की चकाचौंध में उसकी आंखों के आगे अंधकार छा गया है। वह अपनी सुरक्षा के लिये जितने ही अणु-परमाणु और न्यूट्रान आयुधों का निर्माण कर रहा है उतना ही निज को असुरक्षित पा रहा है। वह भयभीत है, चिंतित है।

इसी भय और चिन्ता से मुक्ति का नाम धर्म है। हम इसी धर्म की स्थापना जगत में चाहते है। यही धर्म-निरपेक्ष धर्म है, क्योंकि यह सबका धर्म है--' सर्वभूत हिते रताः'। यह धर्म मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे या चर्च में नही। वहां तो चहारदीवारियाँ है और वह धर्म भला क्या मुक्ति दिला सकता जो स्वयं चहारदीवारियों में कैद हो। मुक्तिदाता तो उन चहार-दीवारियों से बाहर परम स्वतंत्र है। इसीलिये तो बेहद्दी के मैदान में कबिरा पांव पसार कर सोता है और वहां घर करता है जहां अलह-राम का गम नही ('अलह-राम का गम नहीं तहं घर किया कबीर')। यही है आत्मज्ञान जो हर प्रकार के भय, हर प्रकार के बंधन और अभाव से मुक्त करता है।

ऐसी मुक्ति की खोज में निकले मुझ जैसे तुच्छ जिज्ञासु ने मुक्ति-पथ के अन्वेषण की चेष्टा करने की जो चेष्टा इस पुस्तक के रूप में की है, उसके पीछे अपनी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं। सामान्य जिज्ञासुओं को यदि संसार के प्रमुख धर्मो की जानकारी हो जाती है और उनकी अनेकता के भीतर निहित एकता के स्वरूप की झलक मिल जाती है तो मुझे संतोष होगा।

मैने ऊपर 'मुक्ति की खोज' कही है। मुक्ति की खोज वस्तुतः अपने से बाहर की भागदौड़ नही है। प्रथम खण्ड के कई निबन्धों में मैने यह

कहने का प्रयत्न किया है कि धर्म या मोक्ष खोजने से नहीं मिलता है। वह मिलता है अपने आपको खोजने से।

मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक के अध्ययन से पाठकों को अपने आपको खोजने की कुछ प्रेरणा अवश्य मिलेगी।

हरिकिशनदास अग्रवाल

प्रेरणा

मैं मनुष्य जाति के और विशेषत: भारत के आध्यात्मिक इति-हास को एक दिव्य प्रयोजन का सतत विकास मानता हूं, एक ऐसी पुस्तक नहीं मानता जो पूर्ण हो गयी है और जिसकी पंक्तियों को निरन्तर दुहराते रहना होगा। यहां तक कि उप-निषद तथा गीता भी अंतिम नहीं थीं, यद्यपि उनमें सभी चीजें बीज रूप में हो सकती हैं। इस विकास में भारत का वर्तमान आध्यात्मिक इतिहास एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अवस्था है और जिन नामों का मैंने उल्लेख किया है उनका मेरे विचार में उन दिनों एक विशेष महत्व था। मुझे वे उस धारा को सूचित करते हुए प्रतीत होते थे जहां से भावी आध्यात्मिक विकास को अत्यंत प्रत्यक्ष रूप में अग्रसर होना है, रुकना नहीं बल्कि आगे बढ़ना है। मैं कह दूं कि भविष्य में मनुष्य जाति के लिये किसी भी नवीन या प्राचीन धर्म का प्रचार करना मेरे उद्देश्य से बहुत अलग है। इस विषय की मेरी परिकल्पना यह है कि किसी धर्म की स्थापना नहीं करनी है, बल्कि वह रास्ता खोल देना है जो अभी बंद है।

—योगी अरविन्द

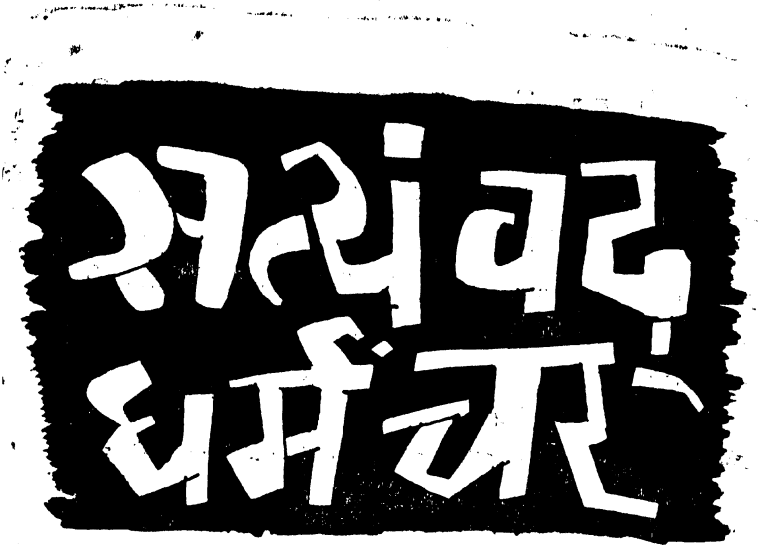

अनुक्रम

क्षितिज क : धर्म का व्यापक स्वरूप

अभेद दृष्टि : सागर दृष्टि	१७
एक ही मार्ग सन्मार्ग	२३
सब धर्मों का आधार	२८
निर्विवाद वाद	३०
सार सार को गहि रहै	३४
सत् और मत	४३
धार्मिकता तो स्वयं को जानना है	४५
सबाय ऊपरे मानुष	४९
धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे	५३
उच्चारण और आचरण	५६
प्रेम की नगरी में गैर कौन ?	६३

क्षितिज ख : संसार के धर्म

हिन्दू धर्म	६९
यहूदी धर्म	७८
पारसी धर्म	८२
जैन धर्म	८७
बौद्ध धर्म	९३
कन्फ्यूत्सी धर्म	१००
ताओ धर्म	१०४
ईसाई धर्म	१०८
इसलाम धर्म	११४
सिख धर्म	१२१

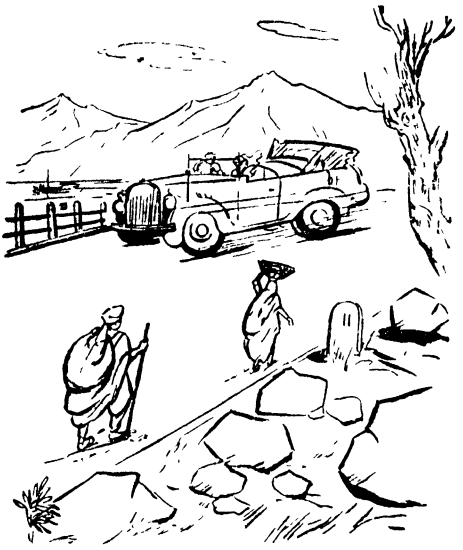

साध्य तक पहुंचने के लिए साधन अनेक हैं, किंतु साध्य सबका एक है।
Diverse are the means, not the end.

क्षितिज : क

धर्म का व्यापक स्वरूप

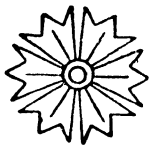

अभेद दृष्टि :
सागर - दृष्टि

धर्म प्रकाश की तरह एक ही है, दो नहीं। **धर्म उसे कहते हैं जो धारने योग्य हो एवं जिसके धारण करने से अभ्युदयपूर्वक निःश्रेयस प्राप्त हो।** सत्य, प्रेम, करुणा, मुदिता, आनन्द, शान्ति इत्यादि सभी धर्मों को प्रिय हैं। सभी धर्म इन्ही का अनुकरण करते हैं, किन्तु इनकी प्राप्ति के उनके उपाय भिन्न-भिन्न हैं।

मजहब-विशेष का ठेका नहीं

जिस प्रकार एक योग्य धार्मिक मुसलमान नमाज पढ़ कर मुहम्मद साहब के बताये हुए पथ पर चल कर अपना लक्ष्य प्राप्त करता है उसी प्रकार हिन्दू, जैन, सिक्ख, पारसी आदि सभी अपने-अपने धर्म के अनुसार अभ्युदय और मोक्ष के मार्ग पर चल अभ्युदय और मोक्ष प्राप्ति के पूर्ण अधिकारी हो सकते हैं। लक्ष्य प्राप्ति करना-कराना किसी एक ही मजहब या सम्प्रदाय का ठेका नहीं है। **यह तो सार्वजनिक सार्वभौम तत्त्व है। जो भी इसकी जिज्ञासा रखता है, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय की मान्यता क्यों न रखता हो, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।**

साधनों की एकता नहीं, लक्ष्य की एकता है।
चलने के रास्ते विभिन्न हैं, पहुँचने का स्थान एक ही है।

Diverse are the ways —— not the Destination.

भारत में ही कई सम्प्रदायों और मजहबों के लोग हैं; जैसे,

वैष्णव, शैव, रामानुजी, माध्व, शंकर, जैन, बौद्ध इत्यादि। इसी प्रकार मुसलमानों में भी शिया, सुन्नी आदि अनेक भेद हैं। ईसाइयों में भी अनेक भेदोपभेद हैं। यदि विवेकपूर्वक एक दूसरे को देखा जाये तो कोई पारस्परिक कलह की स्थिति नही हो सकती। समझदार व्यक्ति इन्हें कलह का कारण न बना कर अपनी लक्ष्यसिद्धि का साधन बनाते हैं। वे सबको अपने मार्ग में समन्वित करते हैं। सबके सच्चे तत्त्व को समझते और समझाते है।

भेद-बुद्धिवाले व्यक्ति की दृष्टि भेद पर ही केन्द्रित रहती है, किन्तु अभेद-बुद्धिवाले व्यक्ति की दृष्टि सदा अभेद पर बनी रहती है। उसको भेद में भी सर्वदा अभेद ही दिखाई देता है पर भेद-बुद्धिवाले को अभेद में भी भेद दिखाई देता है।

भेद-बुद्धि के संवाहक

हर एक मनुष्य की प्रकृति, संस्कार, वातावरण और स्वभाव अलग-अलग होते है। वे भिन्न-भिन्न स्थानों पर भी खड़े हैं इसलिए उनके मार्ग भी भिन्न-भिन्न हो सकते है किन्तु लक्ष्य सब का एक ही– अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करना– होता है। इन दोनों बातों के सच्चे साधन, सत्य-प्रेम की प्राप्ति कोई भी कर सकता है। कोई भी सम्प्रदाय, मजहब और धर्म इसके लिये किसी प्रकार का बाधक नहीं प्रत्युत विधिपूर्वक करने से साधक ही हो सकता है। विभिन्न सम्प्रदायों, मजहबों इत्यादि में जो भेद होता है, वह तात्त्विक नहीं प्रत्युत शाब्दिक है तथा पडित, मौलवी, पादरी आदि की असमन्वित एवं संकीर्ण दृष्टि के कारण होता है। वे भेद को ही अपनी आजीविका का आधार बना कर भेद-बुद्धि फैलाते हैं। वे बिना तत्त्व समझे दूसरों के धर्म को निकृष्ट बता कर अपने

धर्म को ही श्रेष्ठ एवं बड़ा कहते हैं। अगर वे दूसरों के धर्म को निकृष्ट न बता कर अपने धर्म की विशेषताओं की ही चर्चा करें तो इससे भी उनके धर्म का प्रतिपादन हो सकता है।

लक्ष्य ही वास्तविक धर्म

भेद कृष्ण, बुद्ध, महावीर, गुरु नानक और मुहम्मद साहब आदि की अनुभूतियों में नही है। इन महानुभावो की अनुभूति तो एक-सी ही है किन्तु इन सब की अनुभूतियों की अभिव्यक्तियाँ अनुयायियो की दृष्टि एव ज्ञान के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। अनुभूति का प्रतिपादन भिन्न-भिन्न हो सकता है। एक ही धर्म के अनुयायी भी किसी विषय का प्रतिपादन भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। भले ही विभिन्न धर्मावलंबी अनुभूतियों की प्राप्ति के लिये भिन्न-भिन्न मार्ग अपनायें, किन्तु उनके मुख्य लक्ष्य में भेद नहीं होना चाहिये, क्योंकि **लक्ष्य ही वास्तविक धर्म है।** लक्ष्य ही सागर है जिसमें नदी-नाले, सरिता आदि सभी आ कर

अभेद-दृष्टि ही सागर-दृष्टि है

मिलते हैं। नदी-नाले-सरिताओं मे भेद हो सकता है किन्तु सागर सब के लिये एक ही है। सागर के तट भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। **अभेद-दृष्टि ही सागर की दृष्टि है और भेद की दृष्टि नदी-नालों की दृष्टि है।**

गंगा गगोत्री से निकली है, वह अपने मार्ग से गगासागर तक पहुँचती है और यमुना यमुनोत्री मे निकलती है और गंगा से मिल कर सागर में जा मिलती है। गगा का रास्ता अलग और कृष्णा, कावेरी, गोदावरी आदि नदियों के रास्ते भी अलग-अलग हैं किन्तु सबका लक्ष्य—सागर—एक ही है। इस लक्ष्य में कोई भेद नही।

सागर में तरगे उठती है, कई तरगें बहुत ऊंची और कई नीची होती है। अगर हम इसी कारण सागर मे भेद करने लगे तो यह बुद्धि मे भेद के कारण होगा, वास्तविक नही। तरगों की विभिन्नता सागर की विभिन्नता का द्योतक कभी नही हो सकता। सागर में से तरंगे निकलती है और उसी में विलीन हो जाती है। यही क्यो, सागर में फेन और बुदबुदे भी रहते है। बुदबुदे से अगर लहर कहे कि तू छोटा है और मै बडी हू तो यह कितना असत्य होगा, क्योकि जल की एव ज्ञान की दृष्टि से दोनों एक ही है। विभिन्न नामों के और विभिन्न व्यवहार के होते हुए भी वास्तव में वे तत्त्व से एक ही है।

स्वधर्म संभालिये

हरएक मनुष्य का स्वभाव अलग-अलग होने के कारण उसके स्वधर्म भी अलग-अलग है। जिस तरह हरएक आदमी की मनोवृत्ति एक नही, उसी तरह हर एक आदमी का स्वधर्म भी एक नहीं। चाहे वह किसी भी जाति के हों, ज्ञान-विज्ञान द्वारा अथवा

अपना कर्म करते हुए एक-सी स्थिति प्राप्त कर सकते हैं। शूद्र परिवार में जन्म ले कर ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो ज्ञान-विज्ञान प्रधान हैं और ब्राह्मण कुल में जन्म ले कर बहुत से व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपने धर्म में स्थित नहीं हैं। यह धर्म या वर्ण का गुण-दोष न हो कर उन व्यक्तियों के गुण-दोष हैं। मनुष्य चाहे जिस परिस्थिति मे जी रहा हो उसे स्वधर्म संभालना चाहिये।

आंख का धर्म देखना और कान का धर्म सुनना है। वह आंख से सुनने का कार्य नहीं कर सकता और न कान ने देखने का; क्योंकि इनके धर्म अलग-अलग हैं। लक्ष्य वही प्राप्त कर सकता है जो अपने स्वधर्म को पूर्ण करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति करता है।

अभ्युदयपूर्वक निःश्रेयस प्राप्ति

हरएक मनुष्य के सस्कार, विचार, वातावरण, परिस्थितियां, प्रकृति और स्वभाव अलग-अलग हैं। इसलिए उनके मार्ग भी अलग-अलग हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु जीवन का लक्ष्य सबका एक ही है-वह है अभ्युदयपूर्वक निःश्रेयस प्राप्त कर लेना। यह स्वधर्म के पालन से सहज प्राप्त हो सकता है।

एक एव सुहृद धर्मो निधनेप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति॥

● एक धर्म ही ऐसा मित्र है जो मरने पर भी जीव के साथ जाता है; और सब तो शरीर के नाश के साथ ही छोड़ कर चले जाते है। ●

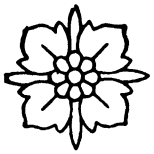

एक ही मार्ग सन्मार्ग

धर्म उसे कहते हैं जो धारने योग्य हो और धारने योग्य जो है वह मनुष्यमात्र के लिए एक ही है। सच अगर करने योग्य है, तो सभी जातियों व धर्मों में माननीय है। सत्य के बारे में किसी का विरोध या वाद-विवाद नहीं। प्रकाश सभी देशों में प्रकाश ही है। यह बात हो सकती है कि एक गांव के अन्दर सरसों तेल का दीपक हो, किसी कस्बे में हरी लैम्प का प्रकाश हो और बड़े शहरों में बिजली का प्रकाश हो। **प्रकाश के ढंग तो भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किन्तु प्रकाश भिन्न नहीं**। अन्धकार की ठोकरों से यदि कुछ बचायेगा तो प्रकाश ही बचायेगा, और यह नहीं कि वह प्रकाश किसी हिन्दू, मुसलमान या ईसाई को ही बचायेगा।

प्रकाश का उपयोग जो कोई भी करेगा वह अन्धकार से बच जायेगा।

प्रकाश धारने योग्य

इसलिये प्रकाश धारने योग्य है और वह सभी मनुष्यों के लिये एक समान महत्ता रखता है। इस बात पर झगड़ना कि मेरा प्रकाश बिजली का है और तुम्हारा दिये का, बिलकुल अज्ञानता और नासमझी है। ऐसे बहुत से मुसलमान सन्त हुए हैं जिनमें हिन्दुओ की आस्था रही है और आज भी ऐसे दृष्टातों की कमी नही। **साईबाबा** के अनुयायी हजारों हिदू है। **मंसूर, हाजी अली** आदि जितने भी सच्चे सन्त हुए, उनको मनुष्यमात्र से एक जैसा सम्मान मिला, चाहे कोई किसी जाति या सम्प्रदाय का हो। हिन्दुओं में जो उच्चतम वेदान्त की शिक्षा दी जाती है, सूफियों में वही अनलहक की शिक्षा भी दी जाती है। सन्त में भेदभाव नहीं, मजहब सम्प्रदाय नही, वह तो केवल सन्त ही है।

सन्त उसे कहते है, जो सतोषी हो और जिसके सान्निध्य से मानवमात्र को शांति की प्राप्ति हो।

'पंडित के हाथि रहि गई पोथी'

यह भेद-भाव और झगड़े और विरोध सतही तौर पर तथा-कथित मुल्ला-मौलवी, पडित-पादरी व ग्रन्थियों ने फैलाये है। स्वयं तो तत्त्व का ज्ञान नही रखते और जनता को सही मार्गदर्शन कराने का दावा करते है। उनका ज्ञान थोथा व पुस्तक से रटा हुआ होता है। इसी को लक्ष्य कर महान योगी गोरखनाथ ने कहा– 'पडित के हाथि रहि गई पोथी।'

पचीस-पचास चौपाई या श्लोक या कुरान में से चद आयतें याद कर लीं तो उससे कोई मनुष्य ज्ञानी नहीं हो सकता है।

ऐसा ज्ञानी बनना भी एक प्रकार से अज्ञान ही है। **कुछ भी बनने की चेष्टा मनुष्य को, वह जो है, उसमें बाधक है। वह किसी जैसा होना चाहता है, अपने जैसा नहीं।** इसलिये कुछ भी बनने की चेष्टा, गुणी-ज्ञानी-योगी-तपस्वी आदि को, जो होने के लिये वह है, होने नहीं देती।

मैंने दुनिया घूम कर देखी है। आप कहीं पर भी चले जायें– राग, द्वेष, क्रोध, भय, चिन्ता, शोक आदि जो एक देश के मनुष्य में या एक धर्म के धर्मावलम्बी में है, प्रायः वही सम्पूर्ण मानव जाति में होते है।

सभी मनुष्यों की एक ही जन्मभूमि है, क्योंकि वे सभी माता के गर्भ में से इस जगत में जन्म लेते है। ऐसा नहीं कि एक मजहब या सप्रदाय का व्यक्ति आसमान से गिरता हो व दूसरा माता के गर्भ से आता है। सभी मनुष्यों में पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायुतत्त्व एक ही है। यह नहीं कि किसी धर्म का मनुष्य इन पचभूतों का हो, किसी अन्य धर्म का मनुष्य सोने या अन्य धातु का बना हो।

संसार में बोलियाँ विभिन्न, भाषाए विभिन्न, लिपियां विभिन्न और यह स्वाभाविक भी है। इसका मतलब यह नहीं कि मनुष्य का मनुष्यत्व अथवा मनुष्य में तत्त्व एक नहीं। प्रत्येक बारह कोस के ऊपर बोली (dialect) मे कुछ अन्तर आ जाता है, किन्तु यह अन्तर आ जाने पर मनुष्य मे कोई अन्तर नहीं आ जाता। पहले कहा जा चुका है कि बहुत से ऐसे सन्त हुए है जिन्हे माननेवालों में सम्प्रदायगत भेद नहीं रहा। इसी प्रकार आधुनिक युग में भी बहुत से हिन्दू सन्त हुए है, जिनके पास सभी धर्मों के लोग जा रहे

हैं। उदाहरण के लिये **श्री रमण महर्षि, स्वामी नित्यानंदजी, साईबाबा** इत्यादि।

एक ही चेतन

इन सब मनुष्यों में चेतना भी एक ही दौड़ रही है और उसका कारण भी एक ही चेतन है। उसे चाहे कोई जिस नाम से पुकारे, अन्तर नहीं पड़ता। चाहे अल्ला, राम, रहीम या गॉड-जिस नाम से संबोधित करे। **नामी को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारने पर नामी भिन्न नहीं हो जाता।** हदवाने को मराठी में कलिगर और अंग्रेजी में वाटर मेलन कहते हैं, हिन्दी में तरबूज भी कहते हैं, किन्तु उसे किसी नाम से भी पुकारने पर वह वही रहता है, अन्य नहीं हो जाता। **चेतन विभिन्न नामों से पुकारे जाने पर भी एक ही चेतन बन कर सभी मनुष्यों के अन्दर व्याप रहा है।**

असंख्य प्राणी काल के गाल में चले जा रहे हैं। कालातीत अवस्था ही काल के चक्र से मुक्त होने का साधन है।

Time and tide wait for nobody. Millions are devoured in the folds of time.

पूजा-अर्चना-वन्दना और ध्यान की प्रक्रियाओं में विभिन्नता हो सकती है। मुसलमान निराकार का ध्यान रखते हैं। उसके सिजदे करते हैं। दिन में पाँच बार नित्य नमाज पढ़ते हैं। **सही, नेकी और सच्चाई पर चलनेवाला मुसलमान भी हो सकता है और हिन्दू भी, ईसाई और पारसी या और किसी धर्म का माननेवाला।**

श्री गुरुनानकजी को हिन्दू-मुसलमान सभी आदर से पूजते थे। उनके सम्बन्ध में तो किंवदन्ती ही है कि उनके शव के लिए हिन्दू और मुसलमान समान रूप से दावा करने लगे तो शव के स्थान पर फूल नजर आने लगे जिन्हें दोनों ने आपस में बांट लिया। भले ही यह किंवदन्ती मात्र हो, किन्तु यह हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीकपुरुष महान युगान्तरकारी संत की उस सफलता की ओर इंगित करती है जो उनके जीवन का व्रत था। **कबीर** ने तो स्पष्ट कहा था– **अलह राम का गम नहीं तहं घर किया कबीर**। जो लोग सन्मार्ग पर चलना चाहते हैं, वह बिना किसी वाह्याडंबर के किसी धर्म में स्थित रह कर चल सकते हैं और जो लोग सन्मार्ग पर नहीं चलना चाहते, वे धर्म के ठेकेदार बन कर सम्प्रदायगत बड़े-बड़े और आकर्षक लेबिल लगा कर चलते है।

धरती धारयति वा लोकम् इति धर्मः।

● जो लोक को धारण करे वह धर्म है। ●

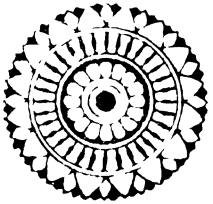

सब धर्मों का आधार

सत् सभी धर्मो का आधार है। अगर इनमें से सत् को निकाल दिया जाये, तो कोई भी सम्प्रदाय या धर्म खोखला हो जाता है, और धर्म के ऐसे ही खोखलेपन के प्रति मानव-जाति को सचेत करते हुए किसी कवि ने लिखा है :–

आदमजाद संभल तेरा है धर्म खोखला धोखेवाला ।
हिलतो है सोने की मस्जिद रूपे का हिल रहा शिवाला ।।

मनुष्य की जन्मभूमि एक, पचभूत एक, चेतन भी एक ही है। सत् भी एक ही है और प्रकाश भी एक ही है। इसलिये धर्म भी एक ही है। **जो धारने योग्य है, वह धर्म है। जो नहीं धारने योग्य है, वह अधर्म है।**

सभी धर्मों में ईश्वर के विभिन्न नाम है, किन्तु नामी एक ही है। जो रमा हुआ है, वह राम। जो आकर्षित करे, वह कृष्ण। जो खुद आये, वह खुदा। जो रहम करे, सो रहीम। जो कर्म करे, सो करीम। जो गुरु का शिष्य हो, सो सिख। जो पार देखे सो पारसी। जो बोध रखे, सो बुद्ध। जो जाने, सो जैनी। और, जो उत्पादन, पालन और संहार करे वही गॉड या ईश्वर। एक ही ईश्वर का ऐश्वर्य सर्वत्र फैला हुआ है, एक ही जगदीश्वर जगत में व्याप्त है।

ईश्वर भी एक ही है, इसलिए धर्म भी एक ही है।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
नारी गृहद्वार सखाः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोक मार्गे
धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

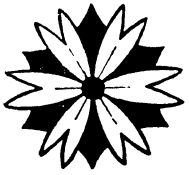

निर्विवाद वाद

कोई भी वाद होगा, तो उसमें विवाद होगा और विवाद होते-होते वितण्डावाद प्रारम्भ हो जायेगा। ये जितने भी वाद हैं, सब संकुचित दृष्टि के ही द्योतक हैं। जहां दृष्टि व्यापक हो जाती है वहां किसी प्रकार का वाद-विवाद नहीं रह जाता।

अनेक वाद : अशान्ति के कारण

अध्यात्मवाद में किसी प्रकार का वाद या विवाद नहीं होना चाहिये, क्योंकि अध्यात्म-विद्या मनुष्य की अपनी विद्या है, जिसके विना वह अन्य वादों में ठोकरें खा रहा है। प्रकाश सभी जगह पर प्रकाश ही है। प्रकाश के माध्यम तो भिन्न हो सकते हैं, जैसे किसी ने मिट्टी के तल का या किसी ने खोपरे का, किसी ने सरसों और किसी ने अन्य तेल का दिया जला लिया हो। माध्यम भिन्न होने पर भी प्रकाश में किसी प्रकार को भिन्नता नहीं। प्रकाश को विभिन्न स्थानों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, किन्तु इस भेद से स्वतः प्रकाश में किसी प्रकार का भेद नहीं आ जाता। अन्धकार के निवारण का निर्विवाद उपाय है, प्रकाश। मूढ़ प्राणियों के लिये तो प्रकाश भी अन्धकार है। प्रकाश का नाम देश एवं भाषा-

मूढ़ प्राणी के लिए प्रकाश भी अंधकार है।
The illusioned see darkness even in light.

वैभिन्य के कारण भिन्न-भिन्न हो जाये किन्तु इससे प्रकाश में किसी प्रकार का अन्तर नही आ जाता। अन्धकार को यदि हम लाठियों द्वारा मार कर भगाना चाहे या टोकरियों से इसे उठा कर बाहर फेंकें तो यह बाहर फेंका भी नहीं जायेगा। अपने ही घर में आराम के लिये लाया हुआ फर्नीचर बिना प्रकाश के ठोकरों का कारण बन जाता है। इसी प्रकार हमारे अन्दर एकत्रित किये हुए बहुत से विचार अथवा वाद शान्ति के विपरीत अशान्ति का कारण बन जाते है।

धर्म जीविका का साधन नहीं

मुल्ला-मौलवी-पंडित-पुजारी-पादरी और ग्रथी इत्यादि ने धर्म को जीविका का साधन बनाया हुआ है, जीवन का साधन नही। **धर्म जीवन का साधन है, जीविका का नहीं।** धर्म को आजीविका बनाने के कारण ही तथाकथित धर्माचार्य धर्म के नाम पर वाद-विवाद और वितण्डावाद शुरू कर देते है। ये लोगों के बीच अपनी बुद्धिमानी का प्रदर्शन करना चाहते हैं। **संसार में दूसरों के मारे हुए उतने नहीं मरे जितने कि अपनी ही बुद्धि के मारे हुए मरे।**

सत्य ही निर्विवाद है

धर्म विवाद का विषय नही, धर्म धारण करने का विषय है। धर्म जीवन **में उतारने का विषय है**। वही मनुष्य धार्मिक है, जिसके हृदय में प्रेम है, करुणा है। जिसके विचार संकुचित नहीं, जिसकी दृष्टि व्यापक है और जिसके अन्दर कोई भेद-भाव नही तथा जो सभी प्राणियों को अपनी आत्मा का ही प्रति-रूप मानता है वही व्यक्ति वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति है। ऐसा

धार्मिक व्यक्ति धर्म को संकुचित अर्थ में नहीं लेता वरन् उसे व्यापक अनुकरणीय साध्य की प्राप्ति करा देनेवाला साधन मानता है। धर्म सत्यं-शिवं-सुन्दर है। प्रकाश की तरह सत्य भी सभी जगह पर सत्य ही है और सभी जगह पर कल्याणकारी भी है। सौन्दर्य भी सब के आंतरिक गुणों को ले कर ही कल्याण-कारी होता है। दो और दो सभी जगह चार ही होते हैं, ऐसा नहीं कि वे कही पांच या तीन होते हों। दो और दो के चार होने में कोई विवाद नहीं, वह परम सत्य है। इसी प्रकार सत्य भी सभी जगह पर एक ही है। यह नहीं कि रूस का सत्य कुछ और है तथा अमरीका का और एव भारत का सत्य कुछ और है। जो सत्य की कसौटी पर ठहरता है, वही सत्य है तथा जो नहीं ठहरता वह सत्य नहीं। असत्य में वाद-विवाद हो सकते हैं किन्तु सत्य में नहीं – वह एक है, उसके टुकड़े नहीं हो सकते। सत्य प्रकाश है और यही वाद निर्विवाद है।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

सार सार को गहि रहै

कभी-कभी धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक झगड़े विकराल रूप धारण कर लेते हैं जो आज के जाग्रत मानव के लिये शोभनीय नहीं कहे जा सकते। **जाग्रत युग में निर्माण होता है, न कि विनाश**। हिंसा की ऐसी ज्वाला जो कि धार्मिक भ्रांतियों की भित्ति पर अथवा भद्दी साम्प्रदायिकता के रूप में प्रकट हो जाये, जिसमें निर्दोष मानवों के रूप में मानवता का वध हो, सच्ची मानवता और राष्ट्रीयता की दृष्टि से बिलकुल ही लज्जास्पद है।

विश्व के समस्त धर्म, जाति, संप्रदाय अन्त में एक सर्वेश के प्रतिपादन में ही तो समाप्त हो जाते है। इससे भिन्न अन्य कोई दूसरा धर्म है ही नहीं। सभी अपने-अपने ढंग से अपने-अपने ज्ञान और श्रद्धा के अनुसार सर्वेश और उसके पाने के मार्ग का निरूपण करते है।

मूर्तिमान में भिन्नता नहीं

प्रायः सभी धर्म मुख्य रूप से आध्यात्मिक उन्नति में सहायक हैं। ये भिन्न-भिन्न प्रकार की साधनाओं से आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग बनाते हैं। केवल विभिन्न भाषाओं एवं अभिव्यक्तियों के कारण उस सर्वशक्तिमान के नाम विभिन्न हैं। किन्तु उन सभी नामों से वही एक सर्वशक्तिमान पुकारा जाता है। नामों की भिन्नता से नामी में किसी भी प्रकार का भेद नही आ जाता। वास्तव में नामी एक ही है। मुसलमानों, ईसाइयों और हिन्दुओं तथा अन्य धर्मो के ईश्वर परस्पर भिन्न नहीं, वे सर्वत्र एक ही है, एक के ही सब विभिन्न नाम-रूप हैं। ये विभिन्न नाम-रूप विभिन्न धर्मो और संप्रदायों के अपने-अपने ढंग से प्रतिपादित उस एक के ही नाम-रूप है। भाषा और धर्म एव संप्रदायों के नाम-रूप-भेदोंसे ईश्वर के अस्तित्व में कोई भेद नही हो सकता। कोई साकार की पूजा करते हैं। साकार में भी कोई राम अथवा कृष्ण अथवा शिव या हनुमान तथा गणेश इत्यादि की पूजा किया करते है। कोई निराकार के भक्त हैं। कहीं-कही सन्तों और महन्तों की पूजा होती है। क्रिश्चियन धर्म में क्राइस्ट, मेरी आदि की पूजा की जाती है। सर्वत्र ईश्वरभाव से पूजित होनेवाली मूर्तियां भिन्न-भिन्न हैं किन्तु इस कारण मूर्तिमान में किसी प्रकार की भिन्नता नही आती। **मूर्तियों का तात्पर्य मूर्ति के माध्यम से मूर्तिमान के दर्शन ही है।** मूर्ति का सहारा ले कर जब मन समाहित हो जाता है तो मूर्ति में तथा अपने अन्दर द्रष्टाभाव मे मूर्तिमान के अस्तित्व का अनुभव होने लगता है। मूर्ति तथा उसके माध्यम से सत्य तत्त्व दृश्य है, उसका देखनेवाला द्रष्टा है। दृश्य से सच्चे द्रष्टा की ओर आने के लिए ही मूर्ति सामने रखी जाती है। मूर्ति में ही रुकने या प्रतिबद्ध होने के लिए मूर्ति खड़ी नहीं की जाती।

इन आकारों-प्रकारों व बाह्य भेदों से जो भी अन्य भेद उपस्थित होते हैं, वे अध्यात्म-पथ पर नही पाये जाते, क्योंकि नाम-रूपों में तो भेद है ही व सदा रहेगा, किन्तु नाम-रूपों के पीछे जो मुख्य नामी का अस्तित्व है, उसमें कोई भेद नहीं हो सकता ।

सभी धर्म मनुष्य-जन्म को एक अनमोल रत्न मानते हैं । उसी में आत्मा की प्राप्ति हो सकती है, किसी अन्य योनि में प्रायः नहीं । यह सिद्धान्त सर्वमान्य है ।

प्रेम ही आत्मविकास

सभी धर्म प्रेम को महान मानते हैं । सभी धर्म मनुष्य के अन्दर प्रेम का प्रादुर्भाव करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस विषय में किन्हीं दो धर्मों के बीच मतभेद नहीं है । प्रेम सजग जीवन है । प्रेम नहीं तो मनुष्य बुझे दीपक की तरह अधकार में ठोकरें खाता है। हिन्दू धर्म में तो प्रेम को ही परमेश्वर कहा गया है। प्रेम वहीं होता है

प्रेम से मिलने का नाम ही सम्मेलन है ।

जहां आत्मीयता होती है। प्रेम ही आत्मीयता है। आत्मीयता में आत्मविकास है। जहां आत्मीयता नहीं वहाँ आत्मविकास भी नहीं होता। इसी सिद्धान्त को ले कर एक देश के लोग दूसरे देश में जाते हैं, उनसे सम्पर्क व बातचीत करते हैं। उनके घरों में अपने ही घर जैसे रहते हैं। उन्हें समझने की चेष्टा करते हैं। फिर उनकी परस्पर मैत्री भावना से आपस में राग-द्वेष नहीं रहता। जहां राग-द्वेष नहीं रहता वहां अवश्य आत्मविकास होता है। रागद्वेष का अभाव ही आत्मपूर्णता की पहचान है। कोई भी धर्म चोरी करने के लिये, किसी को मारने के लिये, व्यभिचार के लिये, झूठ बोलने के लिये और पड़ोसी को सताने के लिये नही कहता। सभी धर्म चोरी न करना, किसी को नहीं मारना, झूठी साक्षी न देना इत्यादि का ही प्रतिपादन करते हैं।

मानवाकार ईश्वर

ईसाई धर्म में मनुष्य को ईश्वर की प्रतिमा माना है। हिन्दू धर्म ने तो ईश्वर को मानवाकार में ही देखा है। इस सिद्धान्त को ले कर दोनों में कोई अन्तर नहीं, चाहे उसको प्रतिमा मान लो चाहे रूप। जगत हरि का रूप है। हरि जगत का निजी स्वरूप है। जगत हरि से भिन्न नही। हरि जगत से भिन्न नही। यह सार्वदेशिक सिद्धान्त है। सभी धर्मो ने मनुष्य की पंचभौतिक देह को नश्वर माना है। नश्वर होने के कारण इसे कोई सत् नही कहता। मनुष्य के अल्प जीवन काल में ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इस अल्पकाल में **मानव ने विश्व के तमाम पदार्थों को भले जान भी लिया हो पर अपने आपको नहीं जाना तो वह मनुष्य जिस किसी भी धर्म का अनुयायी क्यों न**

हो, वास्तविकता तो यह है कि उसने कुछ नहीं जाना। कोई मनुष्य अपने पास - पड़ोस का तो ज्ञान रखता हो, पर अपना ज्ञान नहीं रखता तो उसे अवश्य दुख होनेवाला है क्योंकि पड़ोसी के घर का ज्ञान राग-द्वेष को बढ़ानेवाला तथा निजज्ञान रागद्वेष को मिटानेवाला होता है।

एक सर्वशक्तिमान की कृति

यह समस्त प्राकृतिक विश्व उसी एक सर्वशक्तिमान की कृति है। वही फूल-फलों, पेड़-पौधों, नदी-नालों, पर्वतों, खेतों और जीवों में सर्वत्र बसा है, उसके सिवा कहीं कुछ नहीं। सब स्थानों पर उसी का विकास है। सभी धर्म इसी सिद्धान्त का समर्थन करते हैं।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

आत्मज्ञान में किसी प्रकार के धार्मिक मतभेद या वितंडावाद के लिये स्थान नहीं। अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश – ये जो पंचक्लेश हैं, इनका सभी धर्म और मत निषेध करते हैं। कोई भी मत या धर्म इनका समर्थन नही करता। अज्ञान को सभी धर्म और सम्प्रदायों में अन्धकार माना है और उस अंधकार में से प्रकाश अर्थात ज्ञान की ओर आने का आवाहन करता है – तमसो मा ज्योतिर्गमय। सत् के विना कोई धर्म टिक ही नही सकता, इस कारण सभी धर्म सत् के पालन पर जोर देते है। वे सब सत् की नीव पर ही खड़े है।

नमन और नमाज

प्रत्येक देश में वेश - भूषा, बोली, रहन - सहन और खान-पान इत्यादि भिन्न होने के साथ ही उनके पूजा - पाठ और आरा-

धना आदि की रीति में अन्तर हो जाता है। किन्तु इन बातों से वास्तविक तत्व में कोई अन्तर नही हो सकता। नमाज मुसलमानों की ईश्वरोपासना है—इबादत है। नमाज का अर्थ है, नमः और आज। अर्थात आज और अभी खुदा या ईश्वर को नम कर नमस्कार करो। जब तक मनुष्य नमना यानी झुकना नहीं सीखता तब तक उसे आत्मप्राप्ति नहीं होती। नमाज में नमना और झुकना मानसिक नमन का ही एक प्रतीक है। मन शब्द को यदि उलट दिया जाये तो वह नम हो जाता है। मन का उलटा होना मन के प्रवाह का उलटा होना है। मन का संसार से हट कर भगवान की ओर होना है।

मन जब तक उलट कर आत्मोन्मुख नम नही बन जाता, तब तक उसके अन्दर अहकृति के कारण आत्मविकास नही होता। इस कारण नमन का सभी धर्मो में सर्वोत्कृष्ट स्थान है।

प्रायः सभी धर्मों में ईश्वर को ही सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान माना जाता है। ईश्वर के शरणागत होना और ईश्वर मे मिलने की चेष्टा, यह प्रायः सभी धर्मो का मर्म है। जिस प्रकार एक रुपये को निन्यानबे में मिला देते है तो पूरा सौ हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य ईश्वर में मिलने पर ईश्वररूप हो जाता है। इसमें कोई सदेह नहो है। ईश्वररूप हो जाना तभी संभव है जब कि ईश्वर से मिलने के पूर्व तक वे जीवन्मुक्त, ईश्वर समान निर्लेप रह ईश्वर के ध्यान मे मग्न रहे।

सत्यं-शिवं-सुंदरम्

ईश्वर सत्य है। तीनों कालों में है। संसार में जितनी भी सुंदर वस्तुएं हैं, उसी के प्रतिरूप है। शिव से तात्पर्य है कल्याणकारी।

ईश्वर सबका कल्याणकारी है। सबकी भलाई चाहता है। सबको सुखी करना चाहता है। दुःख तो प्राणी अपनी ही अज्ञानता के कारण भोगता है, अन्यथा ईश्वर या खुदा में दुःख का लेशमात्र भी नहीं। जीव भले ही अपनी करनी से दुःख भोगे पर सर्वेश जीव पर कृपा करके उसे दुःख भोगने की शक्ति अपनी अहेतुकी कृपा से प्रदान करता रहता है। उसी की सुन्दरता समस्त दृश्यमान प्रकृति में प्रकट हो रही है। सब उसीकी कृति है। वही इसका प्रेरक है। वही एक अनेक की तरह भास रहा है। स्त्री-पुरुष के अन्दर भी उसी का सौन्दर्य है। वही सब धर्मों को माननीय है। विभिन्न धर्मों के धर्मावलम्बी अपने-अपने ढंग से उसी सुन्दरम् की उपासना कर रहे है।

निष्कामता, अर्थात निष्काम भाव से कर्म करना सभी धर्मो में समान रूप से माननीय है। सभी धर्मो ने अभयता, आत्म-निरीक्षण, आत्म-विश्लेषण, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, संशुद्धि, उत्साह, मादक वस्तुओं का निषेध तथा सद्मार्ग और ईश्वरप्रणिधान की महत्ता पूर्ण रूप से प्रतिपादित की है।

भेद केवल सतही

वास्तव में धर्म उसे कहते हैं जिसे लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय तथा आत्मकल्याण के लिए धारण करके चला जाये। जो अमल या धारण योग्य नही, वह कभी धर्म भी नहीं। धर्म पर जितने वाद-विवाद होते हैं वे सब ऊपरी – सतही – हैं, अर्थात कर्मकाण्ड की रीति पर ही होते हैं। रीतियों और बाह्य विचारों ने ही धर्मों को भिन्न-भिन्न बना रखा है। व्यावहारिक जीवन में कोई नमस्ते, कोई जय श्रीकृष्ण, कोई सलाम या कोई गुड

मार्निंग कह लेता है। कोई हवन, यज्ञ-यागादि करता है तो कोई उसकी मूर्ति को उसका प्रतीक बना कर पूजता है। कोई झुक कर नमाज पढ़ता है तो कोई नत हो कर चर्च में प्रेयर करता है। इन सब धर्मों के बीच रीति-रिवाज (रिचुअलिज्म) में ही अन्तर है, वरन् सभी धर्मों का समन्वय स्प्रीचुअलिज्म है।

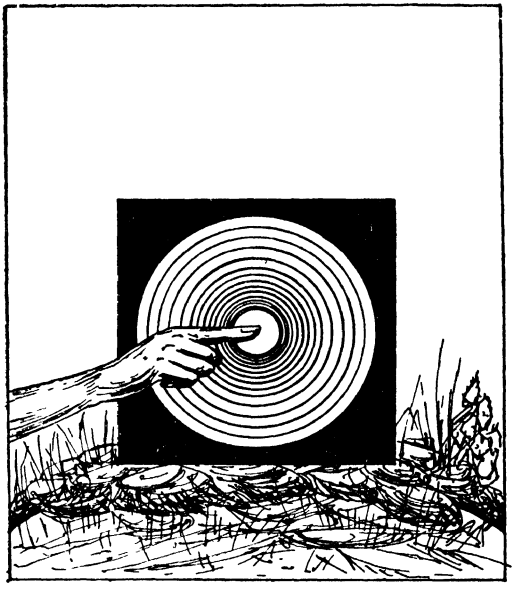

भेद तो सारी दुनियाँ ही देखती और जानती है, पर गुरू भेद में, अभेद के दर्शन कराकर अभेद का भेद बतलाते हैं।

Guru points out unity in diversity. World of plurality is perceived by all but the essential unity is realised only by a few.

ईसाई धर्म में ईश्वर, ईश्वर का बेटा और क्राइस्ट है जिनको कि उनके धर्म में ट्रिनिटी (त्रिमूर्ति) कहा जाता है। हिंदू धर्म में त्रिकोण है, जिसके एक ओर जीव, दूसरी ओर गुरु व तीसरी ओर ईश्वर है। जीव को गुरु ईश्वर की ही कृपा से मिलता है। भक्तों में दासानुदास वृत्ति सदा से चली आयी है और सदा ही चलती रहेगी।

हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्षता

भारत धर्मनिरपेक्षता का पालन करता है। वस्तुत. यह हमारा संविधान सभी धर्मों का समान आदर करता है या करने का निर्देश देता है और किसी धर्मविशेष के प्रति पक्षपात नहीं करता अथवा किसी धर्मविशेष को राज्याश्रय नही देता। वह किसी धर्म से द्वेष नहीं करता।

जहां कानून की पहुंच नहीं

धर्म मनुष्य को सबसे पहले मनुष्य बनाता है, शेष सब कुछ बाद में। कोई भले भौतिक रूप से कितनी ही उन्नति कर जाये पर यदि उसमें मानवता नही है तो चाहे किसी भी धर्म का माननेवाला हो, वह नास्तिक, अधर्मी और सृष्टि की निकृष्ट कृति ही माना जायेगा, क्योंकि **धर्म व्यक्ति का नियत्रण वहां से करता है जहाँ कानून की पहुंच नहीं होती।**

सार सार को गहि रहै

मनुष्य में जैन धर्म-सी अहिंसा, सयम और त्याग हो; बौद्धों जैसा मन की शून्यता हो, रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य जैसी भक्ति हो; मुसलमानों जैसी सामाजिक समानता हो; ईसाइयों जैसी धर्मश्रद्धा हो; सिक्खों जैसा सेवा-भाव एवं गुरु मे निष्ठा हो, पारसियों जैसी पचभौतिक अग्नि जैसी साकारता में ईश्वर-भाव हो; आर्यसमाज जैसी दृढ़ता, समान व्यवहार और वेदों के प्रति श्रद्धा हो और सनातनियों जैसी विशालता, भक्तिभाव व अनेकता में एकता की दृष्टि हो तो वह मनुष्यसृष्टि का महामनुष्य हो जाता है।

सत् और मत

सत् को मत से मत बांधो, क्योंकि सत् मत के दायरे मे नही समा पाता। सत् कोई एकमत भी नही हो सकता। सत् सत् है। सभी मतो का आधार सत् है, जो मतों में यत्र-तत्र समाया हुआ है। बिना सत् के कोई भी मत कभी नहीं ठहर सकता। सत् सब जगह सत् ही है। चाहे वह किसी भी जगह हो। वह कभी एव किसी भी कारण से असत् नही हो सकता। देश और काल का भेद इसमें बाधक नही हो सकता। सत् सब जगह सत् ही होता है। **देश और काल के भेद के अनुसार सत् की अभिव्यक्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार से हो सकती है। सत् कभी असत् नहीं होता।** कोई उसे सदा आच्छादित नहीं कर सकता।

सत् पराधीन नहीं

सत स्वतंत्र है, पराधीन नही है। परन्तु सभी मत परतंत्र हैं। वे विशिष्ट व्यक्तियों के चलाये हुए हैं। मतों के गर्त में पड़ा हुआ संकीर्ण दृष्टिवाला व्यक्ति सत् के दर्शन नहीं कर सकता है। जो मतमतांतर से ऊपर उठा हुआ है, उसी के लिये सत् है। जो मत-मतान्तरों के संकुचित दायरे में फंसा रहता है, वह सत् के दर्शन जाने या अनजाने उतना ही कर पाता है जितना कि उसके मत में सत् है। सती-साध्वी स्त्री वही होती है जिसका सत् हर समय सुरक्षित हो, जो अपने धर्म पर सदा अटल रहे। जो कभी सती-साध्वी हो और कभी न हो उसे सती-साध्वी नहीं कह सकते। उसे सामयिक एकचारिणी मान सकते हैं। इसी प्रकार साधक वही है, जो नित्य निरंतर अविरल भाव से सत् को ही प्राप्त करना चाहता है। जो कभी सत् और कभी असत् पर झुकता रहे, उसको सत् की कभी प्राप्ति नहीं होती। मेरी दृष्टि से वह कभी साधक नही हो सकता। सत् उसे मिलता है, जो सदा सर्वत्र सब में सत् को ही देखता है। सच्चा साधक सत् ही ग्रहण करता है। पर सत् असत् का निर्णय बड़ा कठिन माना जाता है, इसे सच्चे गुरु ही करा पाते है। सत् की पहिचान और ग्रहण करना आ जाये तो फिर कल्याण होने में देर नहीं लगती। और यह पहचान मत-मतान्तरों के शिविरवाद, पंथ, संप्रदायों के गुरुडम से परे रह कर ही हो सकती है; क्योकि यह सब मनुष्य को बाह्याडम्बरों में ही उलझा देते हैं और तत्त्व ओझल हो जाता है।

धार्मिकता तो स्वयं को जानना है

जो धारने योग्य होता है वही धर्म है। जो अपनी ओर ले आये वही धार्मिकता है। जो बाहर की ओर ले जाये वह धार्मिकता नहीं। धार्मिकता का अर्थ यह नहीं कि हम किसी रीति-रिवाज में बंधे हों। **स्वतंत्रता ही धर्म है**। स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं कि हम मनमानी करें, जो चाहें सो करें। उदाहरण के लिए, शहर के बाजारों में लघुशंका कर दें, कहीं पर थूक दें, किसी स्त्री को बुरी निगाह से देखें। मंदिर में दर्शन करने आयें पर ध्यान स्त्रियों की ओर हो अथवा मन में कई प्रकार की वासनाएं, तृष्णाएं, कामनाएं हों। इस प्रकार की स्वतंत्रता धर्म नहीं कहलाती।

अगर हम घर में बैठे है किन्तु मन मंदिर में है तो उससे अधिक फल मिलता है जितना कि मंदिर में जा कर मन कहीं और भटक रहा है ।

कोई हाथ से माला फिरा रहा है और मन में अपना ही संसार रच कर उसी में रम रहा है तो वह व्यक्ति बाहर से माला फेरते हुए भी और धार्मिक दीखते हुए भी अन्दर से धार्मिक नहीं हो सकता । इसलिये महापुरुष आत्मनिरीक्षण पर जोर देते है ।

आत्मनिरीक्षण

आत्मनिरीक्षण हमारे विचारों, विकारों, संस्कारों को उसी प्रकार निरावृत्त कर देता है जिस प्रकार रत्नों से भरी पेटी के खुल जाने पर रत्न निरावृत्त हो जाते हैं । **आत्मनिरीक्षण से बंधा हुआ मन निरावृत्त हो जाता है और उसके अन्दर विचारों की चल रही प्रक्रिया हमें स्पष्ट दिखाई देती है ।**

मन दबाने से दबता नही, मारने से मरता नही और काबू में रखने से रहता नही । मन एक ऐसा सूक्ष्म और विचित्र यंत्र है कि इससे कोई जितना भी लड़े अथवा विरोध करे उतना ही अधिक बलवान होता जाता है ।

कतिपय धर्मावलम्बी कुछ दिनों का उपवास रख कर मन को सीधा करते हैं । मन कुछ समय तक अन्न न मिलने से क्षीण तो हो सकता है किन्तु उसका बाध नहीं होता ।

शान्ति, अशान्ति और मन

प्रायः सभी लोगों की मन को दबाने की और मन को रोकने की ही चेष्टा रहती है । हम समझते हैं कि मन मारने से मर जायेगा, रोकने से रुक जायेगा । परन्तु मन न मारने से मरता है

और न ही रोकने से रुकता है। वल्कि रोकने का प्रयत्न ही मन को और प्रबल बनाता है। इसलिए न मन को मारना है और न ही रोकने का प्रयत्न करना है बल्कि इसे अपने स्थान पर छोड़ देना है। न इसका विरोध करना है और न समर्थन। हमें यह कल्पना भी नहीं करनी चाहिए कि हमारी स्थिति इस प्रकार की वने। जब हम इस प्रकार की कल्पना करते हैं तो हमारे मन में संघर्ष शुरू हो जाता है और संघर्ष (द्वन्द्व) ही मन की खुराक है। संघर्ष के बल पर ही मन जीता है। इसलिए अगर हम इसके साथ संघर्ष न करके इसे जैसा है वैसा ही देखें तो यह निर्बल पड़ना शुरू हो जाता है। मन में उठते विचार शान्त हो जाते है और दो विचारों के बीच में खालीपन वढ़ जाता है और खालीपन का वढ़ना ही शांति का सूचक है। **शान्ति कहीं से लानी नहीं है।** ऐसा नहीं कि जंगल में जाने से शान्ति मिलेगी अथवा किसी शहर विशेष में जाने से शान्ति मिलेगी। शान्ति तो हमारे ही अन्दर है लेकिन मन में उठते संघर्षो के कारण ही हम अशान्त हैं और मन के संघर्षो के शान्त होते ही हमें शान्ति की अनुभूति होने लगती है।

प्रायः यह अनुभव में आता है कि ज्यों ही हम मन के प्रति सचेत होते हैं तो मन शान्त होने लगता है। लेकिन हमारे अचेत होते ही मन कही अन्यत्र ही निकल जाता है– जैसे कि माता के साथ खेलता हुआ वालक माता के काम में लगते ही कहीं भाग निकलता है।

मन वॉलीबॉल की तरह जब हाथ से छूट जाता है तो सीढ़ियों से उतरने की भांति नीचे उतरता जाता है। एकदम नीचे पहुंचने से पहले मन को अगर हम जबरदस्ती रोकते हैं तो वह और भी प्रबल हो जाता है। अगर हम ध्यान करने बैठते हैं तो मन

कहीं-का-कहीं निकल जाता है और हम ज्यों-का-त्यों बैठे भर रह जाते हैं। इसलिए **जहां भी और जिसका भी ध्यान करें या अन्य कार्य करें तो मन लगा कर करें यही धार्मिकता है।**

धार्मिकता स्वयं को जानना है

धार्मिकता का अर्थ बाहरी हाव-भाव नहीं है। हाथ में माला ले कर फेरना या मस्तक पर चन्दन मल लेना कोई धार्मिकता नहीं। धार्मिकता आन्तरिक स्थिति है, अपना अपनापा है, स्वयं को जानना है। धार्मिकता में बनावट या आडम्बर काम नहीं आता। धार्मिकता में सहजता, सरलता, स्वाभाविकता बनी रहती है। बाह्य आचरण और अन्तःप्रकृति में सामंजस्य बना रहता है। मनुष्य की जो स्थिति वैचारिक स्तर पर होती है वही वाणी और कर्म में प्रस्फुटित होती है। इस प्रकार का **अखण्ड व्यक्तित्व ही धार्मिकता का लक्षण और उपलब्धि है।**

धार्मिकता तो सती स्त्री की तरह है। आजकल लोग साम्प्रदायिकता को धार्मिकता मान बैठे है। लेकिन धार्मिकता किसी सम्प्रदायविशेष में नहीं है। धार्मिकता में विकल्प नहीं रह जाता। धार्मिकता वह है जो क्षण-क्षण और पल-पल है। जो कभी हो और कभी न हो वह धार्मिकता नही कहलाती। धार्मिकता तो सती स्त्री की तरह है। जो स्त्री कभी सती हो, कभी न हो उसे सती नहीं कहते। **जीवन के प्रति पूरी सजगता धार्मिकता है। विचारों के प्रति सजगता और आत्मनिरीक्षण धार्मिकता है।** विचार जैसे भी हैं हमारे ही हैं, विचारों को प्रवाहित करने से उनमें परिवर्तन नहीं आता, बल्कि विचारों को अपने साक्षित्व में ले आने से विचारों में परिवर्तन आना शुरू हो जाता है।

○ ○ ○

सबाय ऊपरे मानुष

संसार के फैलाव से उठ कर ऊर्ध्वगति की ओर गमन करने की प्रेरणा प्रायः सभी धर्मों से मिलती है और प्रायः सभी धर्म इस बात में सहमत हैं कि प्रत्येक मानव को संसार की विस्तृति को न नाप कर अपने देह - भाव से ऊपर उठ कर आत्मप्राप्ति करनी चाहिये। सभी धर्म सत्य, अहिंसा, अभय, अक्रोध, त्याग, शांति, क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह, नीति, अलोलुपता, प्रेम, करुणा, सेवा, स्वयं जीना और दूसरों को जीने देना, स्वयं ज्ञानार्जन करना तथा दूसरों को मूर्ख न बनाना, स्वयं आनंदित रहना तथा दूसरों को अपने सद्व्यवहार से आनन्दित करना, निरहंकारिता, अपरिग्रह,

तृष्णा का त्याग तथा अभ्युदय को व्यावहारिक आचरण का आदर्श मानते हैं। प्रायः सभी धर्म दंभ, काम, दर्प, अभिमान, क्रोध, अप्रमाद, अप्रतिष्ठा, मंदबुद्धि, असत्य, मोहशक्ति, वैर, अविश्वास और कामासक्ति आदि बुरी बातों का निषेध करते है।

एक अखंड सत्

सत् सभी जगह सत् ही रहता है। जैसे प्रकाश सभी जगह प्रकाश ही है। सत् प्रकाश के समान है, सर्वत्र एक ही है। विज्ञान के नियम (लॉ ऑफ साइस) भी विश्वजनीन (universal) हैं। अगर पानी ढलान की ओर बहता है तो सभी देशो में वह नीची जगह को ही बहता है। इसी प्रकार रात में भी देश, काल एवं धर्म के अन्तर से कोई अन्तर नहीं आता। **नाम - भेद से तत्त्वभेद नहीं हो जाता।**

सर्वभूत चेतन तत्त्व

शरीर में जो चेतनता है वह शरीर की नहीं, किन्तु एक चेतन आत्मा की है। जन्म के समय शिशु मात्र ईश्वर रूप होता है। धर्म और मजहब का लेबल तो बाद में लगता है। जब वह जन्मता है तो उसमें सिर्फ होता है जीवत्व, मजहब नही। ईश्वर ने तो मानवों की सृष्टि की है, हिन्दू-मुसलमान की नही। भिन्न-भिन्न धर्मो के जो भेद है, वह कर्मकाण्ड के हैं, तत्व के नही। तत्व सब का एक ही है, कभी दो नहीं हो सकते। ईश्वर भी एक ही है और वह सर्वभूत, सर्वव्यापी एव सर्वशक्तिमान है। किसी के मानने या न मानने पर उसकी सत्ता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यह अपनी-अपनी रुचि की बात है कि किसी ने ईश्वर को निराकार माना और किसी ने साकार। किसी ने दोनों ही मान

लिया। निराकार एवं साकार के सम्बंध में **गोस्वामी तुलसीदास** की यह कैसी अनूठी पंक्ति है –

फूलें कमल सोह सर कैसा।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥ (किष्किन्धा कांड)

धर्म या सम्प्रदाय के नाम पर लड़नेवालों की दृष्टि तत्त्व की ओर नहीं जाती। खान-पान, उपासना, रीति-रिवाज, ईश्वर का स्वरूप इत्यादि के सम्बन्ध में मान्यता के भेद तो मान्यता के ही भेद हैं। किसी ने मस्तक पर तिलक लगाया या नही इससे धर्म में तात्त्विक अन्तर नही आता है और एक ही हिन्दू धर्म के माननेवालों में तिलक लगाने के भी ढंग अलग-अलग हैं– मात्र सम्प्रदाय भेद से।

ज्ञानी सांसारिक परिच्छिन्नताओ के परे व्यापकता का अनुभव करता है।
The enlightened attain Self-expansion beyond worldly limitations

धार्मिकता या शोभा की दृष्टि से घिसे हुए चन्दन, केसर या रोली आदि से ललाट पर बनाये हुए विशेष आकार के चिह्नभेद से भला धर्म में क्या तात्त्विक भेद हो सकता है? यह सब छोटी-छोटी बातें है और इन बातों में उलझने से वह जो एकमात्र सबसे बड़ी बात, बुनियादी बात है– एक ही सर्वान्तर्यामी के प्रति समर्पित हो कर पूर्णरूप से अपने आप का कायाकल्प कर लेने और मानव-जन्म सार्थक कर लेने की बात– दृष्टि से ओझल हो जाती है।

आदि धर्म

वास्तव में **एक ही आदि धर्म है मानव-धर्म, सभी धर्म उसी के रूपान्तर हैं**। इसी को लक्ष्य कर **विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर** ने कहा है–

सबाय ऊपरे मानुष
तार ऊपरे किछु नाय।

जो वास्तविक वस्तु ज्ञान है, उसमें कोई अंतर नहीं है। **सर्वत्र पूर्णता को पहुंचा हुआ अध्यात्म-विचार एक ही कोटि पर विश्राम करता है।**

हृदय से निकली हुई मधुर वाणी और ममतामयी दृष्टि के अन्दर ही धर्म का निवासस्थान है। ●

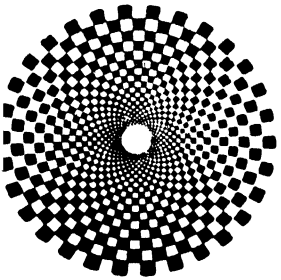

धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे

धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य यह नही कि स्कूल-कॉलेजों में धर्म-शिक्षा ही न दी जाये। स्कूल-कॉलेजों में धर्म की शिक्षा तो दी ही नहीं जाती अतः धर्म के संस्कार विद्यार्थी विद्यालयों में सीखते नही। इससे भ्रष्टाचार, दुराचार, अनाचार, यहां तक कि व्यभिचार को आश्रय मिलता है। कॉलेजों के लड़के-लड़कियों का जीवन दयनीय बन रहा है, चरित्रहीनता प्रवेश कर रही है। वे जाते तो हैं बुद्धि-विकासार्जन के लिए किन्तु बुद्धि का विकास होना तो दूर, बुद्धि ही विकृत हो जाती है।

प्राचीन विद्यापीठ

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है किसी भी धर्म के प्रति समान आदर की भावना। अगर गुरु नानक, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, सन्त ज्ञानेश्वर, एकनाथ, सन्त तुकाराम, मुहम्मद पैगंबर, ईसा मसीह आदि की वाणियों को संग्रहीत कर प्रामाणिक पुस्तकें तैयार की जाये और स्कूल-कॉलेजों में बच्चों को उसकी शिक्षा दी जाये तो इससे बालक-बालिकाओं के अन्दर धर्म के संस्कार जागृत होंगे और वे दक्ष हो स्कूल-कॉलेजों से जब निकलेगे तो अपने सर्वोत्कृष्ट जीवन से आसपास के वातावरण को विकसित कर देगे। स्कूल-कॉलेजों में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के प्रति सरकार की भी रुचि नहीं है। हमारे प्राचीन काल में विद्यापीठ, गुरुकुल आदि होते थे और वहां जो धार्मिक शिक्षा दी जाती थी वह एक व्यापक, विश्वजनीन धर्म की ही शिक्षा होती थी। **जीवन के मूल आदर्शों और लक्ष्यों को जानना ही तो धार्मिक शिक्षा का प्रथम सोपान है** और ऐसी शिक्षा आज हम अपने बच्चों को देने से कतरायें क्यों ?

हमने प्राचीन पद्धति पर स्थापित विद्यापीठों के सम्बन्ध में आधुनिक युग में शायद दिलचस्पी नहीं ली और तत्सम्बन्धी व्यापक अनुसंधान को आवश्यक नहीं समझा और बड़े-बड़े शिक्षा केन्द्रों की विशाल इमारतें बिना नींव खड़ी कर लीं !

सहजवृत्ति या स्वभाव

धर्म केवल साधनाविशेष का ही नाम नहीं है बल्कि इसमें लौकिक एवं सामाजिक कर्तव्य भी अनिवार्य रूप से जुड़े हैं। मनु ने धर्म के जो दस लक्षण—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध—गिनाये है वे लौकिक

एवं सामाजिक कर्तव्यों द्वारा ही परिपुष्ट हो सकते है। **धर्म तो व्यक्ति में सदा बनी रहनेवाली सहज वृत्ति, स्वभाव या प्रकृति है और किसी महात्मा या पैगम्बर द्वारा प्रवर्तित मतविशेष से इसका कोई सम्बन्ध नहीं।** हम ऐसे ही धर्म की शिक्षा विद्यालयों में चाहते है जो छात्रों में शुचिता, विद्या, सत्य, अक्रोध, लोक-व्यवहारसंबधी नियम, कर्तव्य-बुद्धि, निष्पक्षता, उचित-अनुचित ज्ञान, नीर-क्षीर-विवेक, सत्संगति और चरित्र का अभ्युदय करे।

भारतवर्ष केवल धर्म-क्षेत्र ही नही है – यह 'धर्मक्षेत्रे' और 'कुरुक्षेत्रे' दोनों है। कुरुक्षेत्र अर्थात् कर्मभूमि। कर्मभूमि मे उतर कर यदि आज के छात्र असफल रह जाते हैं तो क्या आश्चर्य, क्योंकि 'कुरुक्षेत्रे' के पूर्व जो 'धर्मक्षेत्रे' अनिवार्य रूप से जुड़ा है, उसका तो वहा नितान्त **अभाव** रहता है।

संसार के जो धर्मशास्त्र है उनका प्रतिपाद्य क्या है? धर्मशास्त्र की सबसे सरल परिभाषा क्या है? **यही न कि धर्मशास्त्र वह आप्त ग्रन्थ है जिसमें मनुष्य के कर्तव्याकर्तव्य आदि की व्यवस्था हो।** और हम, आज इस कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान से अपने बालकों को वचित रखते है! ऐसी स्थिति में हम किसी आत्मजिज्ञासु नचिकेता की कल्पना कैसे कर सकते है ?

उच्चारण और आचरण

धर्म आचरण का विषय है, उच्चारण का नहीं किन्तु मुल्लाओं, पादरियों, पंडितों तथा विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों ने इसे संघर्ष का विषय बना लिया। मुसलमान निराकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान परमात्मा को मानते हैं। उसी की शक्ति की अभिव्यक्ति संसार में हो रही है, यह उनका दृढ़ विश्वास है।

उनके सामाजिक आचार में मुहब्बत (प्रेम) की विशेषता है। एक ही दस्तरख्वान पर सारे परिवार के लोग तथा इष्ट-मित्र एक साथ खाना खाते हैं। एक ही हुक्का घर में तथा अतिथियों में चलता है।

नमाज, सूर्य-नमस्कार से मिलती-जुलती ध्यान की एक प्रक्रिया है। इससे आत्मसंतुलन आता और शरीर निरोग रहता है। नमाज के समय नमाजी किसी प्रकार का बाह्य व्यवधान नही चाहते। उनके मजहब में मन को शांत करने के लिए बाहर की तथा अन्तर की विघ्नबाधाओं से बच कर खुदा की याद करना श्रेयस्कर समझा जाता है।

रूप से अरूप में

आप याद कहे, सुमिरन कहे—कोई अन्तर नही। हिन्दुओं में आर्य समाज को माननेवाले ईश्वर की निराकार सत्ता ही मानते है। वे हवन के द्वारा परमात्मा को आहुति देते है। आहुति देने का तात्पर्य यही है कि हे ईश्वर! तू ही सर्वस्व है। मुझमें शक्ति, तेज, चेतना तेरी ही है। तू ही सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ है। अष्टांग योग-आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि, प्रत्याहार आदि—को साधते है और मन को संकल्प-विकल्पात्मक अवस्था से निकाल कर मन को शान्त करते है। हिन्दुओं में जगत हरि का ही रूप है और दृष्टि जगत का स्वरूप। भक्ति-संप्रदाय में ईश्वर को ही सर्वस्व, ईश्वर की ही पूजा-अर्चना किसी-न-किसी रूप में की जाती है। **रूप से उठ कर अरूप में ही स्थित होना है।** जब भगवान की मूर्ति का ध्यान करते हैं तो जगत के विचार लुप्त हो जाते है और केवल एक भगवान की ही मूर्ति सामने रह जाती

है। भगवान दयालु है, कृपालु है। जन्म-मरण उसी के हाथ में है। वही सब करण-कारण है। मनुष्य उसके हाथ का एक खिलौना है। उसी का अस्तित्व है, हमारा है ही नहीं। यह भावना प्रायः प्रत्येक धर्म में पायी जाती है।

वेदान्त मे नाम और रूप को माया बताया गया है। **मनुष्य का स्वरूप अस्ति, भाति, प्रिय है**। उसका अस्तित्व अस्ति से ही है। उसका भान होना भाति से है और अपने में प्रियता ही उसका निजस्वरूप है। वह सत्-चित्-आनन्द है। सत् के मानी है अमरत्व जो पहले भी था, अब भी है, आगे भी रहेगा। चिद् का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान नित्य-निरन्तर बना रहता है। ज्ञान अविनाशी है। आनन्द जीव का स्वरूप है किन्तु कभी-कभी इसका स्वरूप आवृत्त हो जाने से वह अपने को परमात्मा से भिन्न मानने लगता है और दुखी होता रहता है। जब सभी धर्म परमात्मा को अविनाशी, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक मानते है तो जीव को उसमे अलग कैसे किया जा सकता है! जीव भी तो उसी की व्यापकता के अन्दर आ जाता है।

ईसाइयों ने कहा है कि आय एण्ड द फादर आर वन – इसमें स्पष्ट रूप से तत्त्वमसि की ही ध्वनि है। मसीहा कहते है 'यी आर गॉड्स'। **मनुष्य समर्पण और भक्तिपूर्वक अर्चना और वन्दना करता है। उसके अन्दर सूक्ष्म शक्तियों का प्रादुर्भाव होने लगता है। अपना निरीक्षण करने से मनुष्य अपनी गहराइयों में उतर कर दिव्यता** (Divinity) **को प्राप्त होता है।**

आत्मान्वेषण

हरएक मनुष्य के लिए यह जानना जरूरी है कि मै कौन हूं–

हू एम आय – यही प्रश्न उसके दिव्य प्रश्न को उद्घाटित करने का निमित्त बनता है। इस प्रकार से आत्मान्वेषण की महत्ता प्रायः प्रत्येक धर्म में प्रतिपादित की गयी है।

मनुष्य की आत्मा स्थूल, सूक्ष्म शरीर से परे है। यह अन्नमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष सभी से परे है। मनुष्य का अस्तित्व यह पंचभौतिक शरीर नही है। यह तो विनाशी है। यह मन, बुद्धि, प्राण भी नही है, मनुष्य की आत्मा इन सबसे परे है। धर्म जब साम्प्रदायिक बाना धारण कर लेता है तो झगड़े का कारण बन जाता है। किन्तु **जब मनुष्य अन्दर की गहराइयों में उतरता है तो धर्म उच्चारण का विषय न रह कर आचरण का विषय बन जाता है।**

बातें करने से बात नहीं बनती और न ही बात समझ में आती है। मुल्ला, पादरी, पडित, ग्रन्थी इत्यादि में चन्द ऐसे भी होते है जो गहरे पैठते हैं और अपनी वाणी के रूप में अनुभव के मुक्ताकण बांटते है। अधिकांश तो ग्रंथों मे लिखी बात को रटते-रटाते रहते है। पाकशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ पढ़ लेने से भूख की निवृत्ति नही होती। भूख की निवृत्ति होती है भोजन को उदरस्थ कर लेने से। भोजन शरीर के लिए शक्तिदायी तभी बनेगा जब वह खाने के पश्चात हजम हो कर मनुष्य की नस-नस में संचरित होने लगेगा।

अपने-अपने धर्म की मान्यता को ऊचा समझना स्वाभाविक है। किन्तु दूसरे के धर्म को हीन समझना, उसके अन्दर दोषबुद्धि रखना, छिद्रान्वेषण करना और अनुचित तौर पर टीका-टिप्पणी करना नादानी है। जो पूरी तरह समझे बिना अधिकारपूर्वक उसकी श्रेष्ठता का दावा करते है उनमें दूसरे धर्मों के गुण-दोष

को समझने की क्षमता कैसे आ सकती है ?

अन्धा अगर प्रकाश की चर्चा करे और पुस्तकों के आधार पर दूसरो से लड़े तो इससे प्रकाश की सिद्धि नहीं हो जाती, किन्तु जब अन्धा अपनी आंखों का इलाज करवा कर दृष्टि प्राप्त कर ले तब उसे प्रकाश को सिद्ध करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती । वह तो प्रकाश देख रहा है, सिद्ध करने की क्या जरूरत ? **सिद्ध करने के चक्कर में वही पड़ता है जो देखता नहीं ।**

अन्तर्दृष्टि का अभाव

मुल्ला, पादरी, पंडितों की भी यही स्थिति है । अज्ञानता के कारण उनकी अन्तर्दृष्टि काम नहीं कर रही । इसलिए वे दूसरों की बात निषिद्ध बता कर अपना पक्ष सिद्ध करते है । किन्तु जिस सन्त-महापुरुष ने अपने आपको जान लिया है, अपने दर्शन कर लिये हैं वह उच्चारण के झगड़े में नही पड़ता । उसका आचरण ही बतलाता है कि सारे धार्मिक टंटे उसके लिये अर्थहीन हो चुके है । अभेद का साक्षात्कार कर ईश्वर ने मानवों की सृष्टि की है । बच्चा जन्म लेता है, फिर उस पर धीरे-धीरे संप्रदायगत संस्कार डाले जाते हैं ।

साम्प्रदायिक धर्म देश, काल के अनुसार बनाये जाते है । अतः विभिन्नताएं स्वाभाविक हैं । किन्तु एक ही परमात्मा निखिल जगत का रचयिता है । उस सर्वेश्वर को साम्प्रदायिक दायरे में बांध लेना उसको छोटा बना लेना है । ईश्वर किसी जाति-सम्प्रदाय का नहीं । ईश्वर वह है जिसका ऐश्वर्य सारे ब्रह्मांड में फैला हुआ है ।

धर्म एक ऐसा आकाश है जो सर्वव्याप्त है, सब में है। आकाश में चारदीवारी बांध देने से वह खंडित नहीं हो जाता। साम्प्रदायिक भेदभाव से ईश्वर की सत्ता कम नही हो जाती। जीवमात्र में चेतना एक ही ईश्वर की है। लकड़ी में अग्नि दिखाई नहीं देती किन्तु सुलगती है। दियासलाई में अग्नि दिखाई नहीं देती पर रगड़ने पर सुलगती है। वल्ब का कनक्शन पावर हाउस से है। सभी बल्बों में प्रकाश एक ही है। वल्बों के कैण्डिल भिन्न हो सकते हैं किन्तु उनमें प्रकाश भिन्न नहीं। ईश्वर की ही चेतना सभी मनुष्यों में व्याप्त है। इसलिये ईश्वर को साम्प्रदायिक रूप देना, उसकी सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता को विकृत कर देना है।

लकड़ियों में अग्नि एवम् मनुष्य मे ईश्वर छिपा है।
Fire is hidden in wood and God in man.

मुसलमान और ईसाई शव को गाड़ते है, हिन्दू जलाते है और पारसी गीधों के आगे डाल देते हैं। शव चाहे गाड़ा जाये चाहे

जलाया जाये, चाहे गीधों के आगे डाला जाये, उसे तो पंचमहाभूतों में मिलकर एक हो जाना है। आकाश आकाश में, वायु वायु में, अग्नि, जल, पृथ्वी अपने-अपने तत्त्वो में मिल जाते हैं। वहां न कोई धर्म रहता है न संप्रदाय रह जाता है। रह जाता है—केवल एक अखंड विराट सत्य !...

● जो धर्म विज्ञान और धर्म को, आस्तिकता, ईसाई-धर्म, मुसलमान-धर्म और बौद्ध-धर्म को एक साथ अंतर्भुक्त करना है और फिर भी इनमें से कोई नहीं है, उसी की ओर विश्वात्मा अग्रसर हो रहा है। ●

—श्री अरविन्द

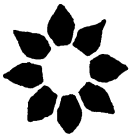

प्रेम की नगरी में गैर कौन ?

कोई भी अशांति गैर के कारण ही उत्पन्न होती है और गैर कोई नही, वह स्वयं मनुष्य की कल्पना की उपज है। उसके उत्पादक उस 'गैर' को पलस्तर करने के लिये विश्व की सबसे अधिक नाजुक नाड़ी धर्म को पकड़ कर सम्प्रदाय तथा फिरका-परस्ती की एक 'गैर' दुनिया खड़ी कर देते है। उस गैर दुनिया में सभी एक-दूसरे के लिये गैर हो जाते है और आपस मे लड़ते हैं और खून की दरिया वहा देते है। इस प्रकार शांति और प्रेम के वृन्दावन में आग लगा, अशान्ति मोल लेते है और इस अशांति के, नफरत के रचयिता अपनी सफलता पर फूले नही समाते है।

अन्तर केवल मुखौटे का

इस विश्व में कोई गैर नहीं। सब अपने है। जो जिस लिवास में है, **अन्तर सिर्फ लिबास का है, मुखौटे का है। इस भेदप्रदर्शिनी काया के भीतर जो विमल अन्तस् है उसमें कोई भेद नहीं।** वहा सभी एक-दूसरे के अपने है-तदाकार आत्मा एक है। फिर झगड़ा किस बात का ?

एक ही अनेक होकर भास रहा है।

इस तथ्य का विश्लेषण यहां एक दृष्टान्त के माध्यम से किया गया है– जब ट्रेन गुजरात के प्रमुख स्टेशनों से निकलती है, तो आम तौर पर यह आवाजें सुनने को मिलती है कि 'बामणिया चाय पियो' –कैसी हास्यास्पद बात है ! चाय तो स्वयं में न ब्राह्मण है, न शूद्र। ब्राह्मणपन तो उसमें मनुष्य ने अपनी ही संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण थोप दी है।

स्वतत्रता प्राप्ति से पहले जब गाड़ी किसी स्टेशन पर पहुंचती

थी तो वहां भी इस प्रकार की आवाजें आती थीं कि हिन्दू पानी, मुस्लिम पानी, हिन्दू चाय, मुस्लिम चाय इत्यादि। जब मनुष्य में भेद-बुद्धि यहां तक आ जाती है कि वह जल में जलत्व न देख हिन्दू-मुस्लिम देखता है तब वही मनुष्य यदि धर्म – जो मनुष्य का धारक है – में भी हिन्दू या मुस्लिमपन देखता है, तो इसमें आश्चर्य क्या ?

धर्म तो बस धर्म ही है। वह न हिन्दू है, न मुस्लिम। वह तो केवल धारण योग्य ही है – उसे जो चाहे धारण कर सकता है।

धर्म एक व्यापक तत्त्व

धर्म एक व्यापक तत्त्व है, जैसे सत्य है। सत्य सर्वत्र सत्य ही है, अथवा जैसे गणित है – गणित में २ और २ का योग जो ४ ही होगा, उस योग के लिये न स्थान का न समय का बंधन है। उसे चाहे सतयुग में जोड़ो, चाहे कलियुग में, दिन में जोड़ो चाहे रात में, ब्रह्मवेला में जोड़ो चाहे गोधूलि वेला में। योगफल वही होगा।

सत् एक है

सत् एक है। बाकी सब कुछ उसके अन्तर्गत है। इसलिये सत् वह है जिसे प्राप्त करने के बाद कुछ भी प्राप्त करना बाकी नहीं रह जाता है। सत् सदा-सर्वदा रहता है। त्रिकालाबाधित है, किसी भी काल में उसका बाध नहीं होता। उसी सत् में मनुष्य के सब कार्य हो रहे हैं। उस सत् को जब तक हम जान नहीं लेंगे, हमें शांति नहीं मिलेगी।

सन्त भी उसे ही कहते हैं। **संत वही है जो सत् का प्रेमी एवं**

अन्तर से शान्त हो तथा जिसके पास बैठने से शान्ति मिले। सत् ही शक्ति है और शान्ति ही सत् है।

जिस मनुष्य का मन खाली हो जाता है, उसकी वृत्ति टिकने भी लग जाती है। फिर उसका मन मौन हो जाता है। उस शान्त मन में शान्ति की अनुभूति होना अनिवार्य है।

मन के मौन होते ही मनुष्य स्वबोध में स्थित हो जाता है। वही स्थिति सत्य है, और वही शान्ति है जो कि किसी भी मनुष्य को प्राप्त हो सकती है। उस शान्ति की प्राप्ति के लिये किसी भी सम्प्रदाय, मजहव या जाति विशेष की कोई भी आवश्यकता नहीं। किसी भी जाति एवं संप्रदाय के व्यक्ति को स्व की प्राप्ति पूर्णतया संभव है। जिस प्रकार चाय के आगे बामणिया लगा देने से चाय बामणिया नहीं हो जाती, वह तो केवल चाय ही रहती है, उसी प्रकार सत्य के आगे सम्प्रदाय, धर्म अथवा मजहब के लेबिल लगा देने से कोई संप्रदाय, धर्म व मजहब सत्य का एकमात्र ठेकेदार नहीं हो जाता। सत् सार्वभौम तथा सर्वव्यापक है और उसकी प्राप्ति का सबको समान अधिकार है। उसके ऊपर लेबिल लगा कर उसे परिच्छिन्न बना देना एक लौकिक परिमित दृष्टि है **और इन सब लेबिलों को हटा कर एक सत् की प्राप्ति करना व्यापक दृष्टि है, जिसे प्राप्त करने का अधिकारी मानवमात्र समान रूप से है।**

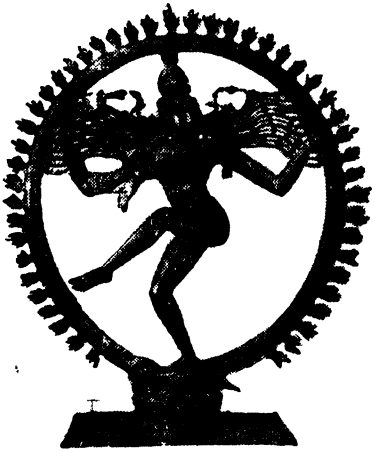

हिन्दू धर्म

मानवमात्र का कल्याणकामी

हिन्दू धर्म का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। भारतवर्ष में तो जैन, बौद्ध तथा सिक्खों को भी हिन्दू कहलाने में कोई आपत्ति नहीं। ईश्वर को माने न माने, वेदों को माने न माने, मूर्तिपूजा करे, निराकार की उपासना करे, गृहस्थ हो या संन्यासी, कर्मकाण्ड में विश्वास करे या परम औघड़ ही क्यों न हो—हिन्दू धर्म में सबका स्वागत है।

इस विश्व की सृष्टि होती है और इसका सृष्टिकर्ता ईश्वर है, जिसके अनेक नाम हैं। जीव जन्म लेता है और मरता है, पुनः जन्म लेता है। हिन्दू धर्म में पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन है।

आत्मसाक्षात्कार

जगद्गुरु शंकराचार्य ने कहा है– पुनरपि जन्मं पुनरपि मरणं.... तदपि न मुंचत्याशा पिडम्। जब तक देहभाव बना रहता है, जन्म-मरण नहीं छूटता। इससे विकल हो कर जीव जब साधना करता है तब आत्मसाक्षात्कार होता है। आत्मसाक्षात्कार से संसार का पाश छूट जाता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है।

हिन्दू धर्म के माननेवालों में आस्तिक और नास्तिक भेद भी अत्यन्त प्राचीन है– ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी। ईश्वरवादी अर्थात जगत का स्रष्टा ईश्वर को माननेवाले और ईश्वर को न माननेवाले अनीश्वरवादी। किन्तु ईश्वरवादी एवं अनीश्वरवादी दोनों ही वेदों को प्रमाण मानते आये हैं।

हिन्दू धर्म में जितना समादरणीय कर्म-उपासना-ज्ञान का मार्ग रहा है उतना ही योगमार्ग भी। जिस प्रकार भक्ति, उपासना और ज्ञान से कैवल्य दशा की प्राप्ति होती है उसी प्रकार योगमार्ग से भी। योगमार्ग का सबसे प्रसिद्ध सम्प्रदाय नाथ संप्रदाय था जिसमें मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ इत्यादि हुए।

व्यापक रूप से हिन्दू धर्म के लक्षण में तीन बातें प्रमुख हैं–

अ– कर्मफल में विश्वास।
ब– पुनर्जन्म मे श्रद्धा।
स– मुक्ति में आस्था।

धर्मसाधना-पद्धति में अनेकानेक भेद हैं, किन्तु पुनर्जन्म से छुटकारा पाने के लिये परम अविनाशी का चिन्तन करते हुए आत्मसाक्षात्कार करना और परमानन्द की प्राप्ति करना – यही सब का एकमात्र लक्ष्य है।

वेशभूषा, शौचाचार, शिखा-तिलक, भजन-पूजन, ध्यान-धारण, तीर्थ-व्रत इत्यादि सम्बन्धी मान्यताओं में जो भी भेद हों – जो कि बाह्य हैं –मूल रूप से आचार सम्बन्धी विचारों में भी कोई तात्विक भेद नहीं है। प्रायः सब ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इत्यादि की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है।

नैसर्गिक धर्म

अन्य धर्मों से इतर, हिन्दू धर्म की एक विशेषता यह है कि **यह एक शाश्वत एवं नैसर्गिक धर्म है**। संसार में अन्य जितने भी धर्म है वे एक विशेष समय में विशेष महापुरुष द्वारा प्रवर्तित हुए और उनमे निहित कुछ विशिष्ट मौलिक सिद्धान्तों को माननेवाले ही उनके अनुयायी कहे जा सकते है, किन्तु हिन्दू धर्म का जन्म किसी काल-विशेष एवं व्यक्ति विशेष की सीमा में आबद्ध नहीं है। यह वास्तव में सनातन धर्म है। किसी अवतार ने भी कभी यह घोषणा नहीं की कि वह इस धर्म का जन्मदाता है।

सर्वेभवन्तु सुखिनः

यह सनातन धर्म वर्णाश्रम धर्म का पोषक रहा है, लेकिन मूलतः किसी वर्ण को श्रेष्ठ और किसी को हीन नही माना गया। इसने ब्राह्मण एवं ब्राह्मणेतर –शूद्र तक– मनीषियो एवं आत्मज्ञानियों की वाणियों का समान रूप से समादर किया है। वर्णाश्रम व्यवस्था आज विकृत हो गयी है और कर्मगत विभाजन को छोड़

जन्मगत विभाजन की रूढ़ि से ग्रस्त हो जाने के कारण यह हिन्दू धर्म का आज भी बड़ा अहित कर रहा है, किन्तु क्या यह सकीर्ण वर्णवाद सर्वेभवन्तु सुखिनः का विराट उद्घोष करनेवाले उदार हिन्दू धर्म से कहीं मेल खाता है? एक चाण्डाल भी यदि अनासक्त भाव से भगवदोपासना करता है तो वह कैवल्यप्राप्ति का अधिकारी है– हिन्दू धर्म साहित्य में ऐसे दृष्टान्तों का अभाव नहीं।

मूल आधार

आध्यात्मिकता, त्याग, तपस्या, सत्य और विश्वप्रेम हिन्दू धर्म के मूल आधार हैं, और **अध्यात्मवाद परोक्ष नहीं बल्कि प्रत्यक्ष अनुभूति की चीज है**। हिन्दू धर्म मानवमात्र का कल्याणकामी है। मानव समाज के भौतिक उत्थान में शास्त्रविहित रीति से हाथ बंटाते हुए चरम आध्यात्मिक सुख की उपलब्धि– परम प्रभु की प्राप्ति– प्रत्येक हिन्दू की कामना रहती है।

आन्तरिक विशेषताएं

हिन्दू धर्म की आन्तरिक विशेषताओं के रूप में मुख्य रूप से निम्नलिखित तत्वों का उल्लेख किया जा सकता है–

१. शरीर की अपेक्षा आत्मा का महत्त्व–

परिवर्तन तो शरीर का होता है, आत्मा अमर है।

२. आचारगत विशेषता–

मनु और याज्ञवल्क्य से ले कर प्रायः सभी स्मृतिकारों ने बतलाया है कि इस संसार में रह कर धर्माचरण करते हुए किस तरह सांसारिक व्यवहार का निर्वाह किया जा सकता है। **हिन्दू समाज के समस्त आधारभूत शास्त्रों में आचार सम्बन्धी व्यवस्था में एकरूपता है**। योगवाशिष्ठ में आर्य का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि आर्य वह है जो स्वभाव से ही करने योग्य कार्य करता है और अकरणीय को नहीं करता। वह

निषिद्ध का परित्याग एवं शुद्ध आचरण करता है। वह सदा शास्त्रानुकूल कार्य करता है जिससे मर्यादा और परम्परा की रक्षा होती है। यह अवस्था अन्तःकरण की शुद्धि से प्राप्त होती है।

अठारहों पुराणों में भगवान व्यास के साररूप दो ही वचन कहे जा सकते हैं– दूसरे के साथ बुरा बरताव पाप है और अच्छा आचरण करना पुण्य है। महर्षि याज्ञवल्क्य का निम्न श्लोक तो प्रसिद्ध है ही–

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दया दमः क्षान्ति सर्वेषां धर्मसाधनम्॥

३. धर्म की एकमात्र सत्ता–

मानव-जीवन की सर्वांगीण उन्नति के लिये अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की आकांक्षा का समुचित समन्वय। वेदव्यास तो कहते है कि **अर्थ और काम की इच्छा हो तो भी धर्म का अनुष्ठान करना चाहिये, क्योंकि धर्म से ही वे प्राप्त होते हैं– धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।**

राजनीति, जीवन, दर्शनशास्त्र इत्यादि की सत्ता धर्म से भिन्न नहीं है। एकत्व में अनेकता की अभिव्यक्ति और अनेकता में एकत्व का दर्शन– यही हिन्दू दर्शन की विशेषता है।

४. निष्काम कर्मयोग–

निष्काम कर्म को गीता में यज्ञ कहा गया है। जिस कर्म में कोई आसक्ति या कामना न हो वह मनुष्य को निवृत्ति की ओर ले जाता है।

५. परमसत्ता में विश्वास–

सच्चिदानन्दघन एकमात्र परमात्म सत्ता है। वह सत्ता प्राणि-मात्र के हृदय में निवास करती है। अपने को अन्तर्मुख बना कर उसे प्राप्त किया जा सकता है। हमारा यह मूर्त जगत कल्पित

है, भावरूप है, अनित्य है अतः मिथ्या है। जो नित्य सत्ता है, सत्य है – यह मूर्त जगत उसका लीलाविलास है।

६. ज्ञान अपौरुषेय है–

महात्माओं द्वारा प्रचारित ज्ञान भी ज्ञान का अंशमात्र ही होता है। पूर्ण ज्ञानस्वरूप तो एकमात्र सर्वशक्तिमान परमेश्वर ही है। ज्ञान की उपलब्धि होती है अन्तर की एकाग्रता से।

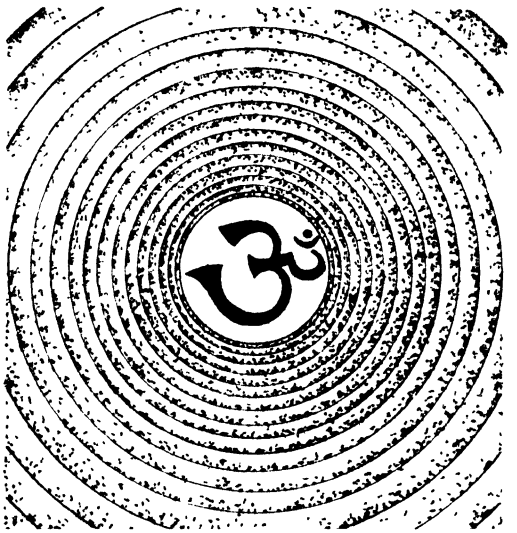

वेदों में ईश्वर का निर्विवाद सर्वोत्तम नाम 'ॐ' अक्षर है जो क्षर देह से उठाकर अक्षर आत्मा का दर्शन कराता है।

Om is indisputably acceptable to all,
Short name of the Immutable as the Vedas call;
Redeems the soul from the physical bondage,
Makes it realise its immortal heritage.

धर्मग्रन्थ

वेद– वेद हिन्दू धर्म के आदि ग्रन्थ है। 'वेद' शब्द का अर्थ होता है ज्ञान। इसकी व्याख्या इस रूप में की जाती है कि विशुद्ध ज्ञान-मात्र वेद है। **वेद मूल ज्ञान है।** उसी की विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति महा-पुरुषों की वाणी द्वारा समय-समय पर हुई है। वेद ही ईश्वरीय पूर्णज्ञान के स्वरूप है।

वेदांग– वेदों के अंगस्वरूप कुछ ऐसे ग्रंथ हैं जो वेदमंत्रों के उच्चारण, अर्थ समझने आदि में सहायक होते हैं। इनकी संख्या ६ है– शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छंद, ज्योतिष और व्याकरण।

उपनिषद् – उपनिषदों की संख्या १०८ है। इनमें से तेरह मुख्य है– ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, कौशीतकी, मैत्रायणी, श्वेताश्वतर। ये उपनिषद् हिन्दू संस्कृति की अमूल्य और अतुलनीय आध्यात्मिक संपत्ति हैं। 'उपनिषद्' शब्द का तात्त्विक अर्थ है ब्रह्मविद्या। काठकोपनिषद् के उपोद्घात में श्री शंकराचार्य ने कहा है – जिससे मुमुक्षुओं की संसार बीज-भूत अविद्या नष्ट होती है, जो विद्या उन्हे ब्रह्मप्राप्ति करा देती है और जिससे दुखों का सर्वथा शिथिलीकरण हो जाता है, वही अध्यात्मविद्या उपनिषद् है। उपनिषदों को वेदों का ज्ञानकाण्ड माना जाता है।

उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता और व्यासरचित वेदान्तसूत्रों का नाम आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी रखा है। हिन्दू धर्म एवं दर्शन की विशेष आधारशिला यह प्रस्थानत्रयी है।

मंत्र– वेद के संहिता भाग को मंत्र कहते है।

ब्राह्मण– यह वेदो के मन्त्र एवं सहिता से भिन्न विभाग है। तपोनिष्ठ ब्राह्मणों द्वारा संकलित होने के कारण इनका नाम ब्राह्मण पड़ा।

आरण्यक– ब्राह्मण-ग्रन्थों के जो अश अरण्य में पढ़े गये या उपदिष्ट किये गये उन्हें आरण्यक कहते है। इनमें वानप्रस्थों के कृत्यों का वर्णन है। ब्राह्मणों और आरण्यकों को कर्मकाण्ड कहा जाता है।

पुराण- पुराणों की संख्या अठारह है-विष्णु, पद्म, ब्रह्म, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, ब्रह्माड और भविष्य। इनमें सृष्टि, लय, मन्वन्तरों तथा प्राचीन ऋषियों-मुनियों और राजाओं के वंशों तथा चरितों का वर्णन है। मुख्य विषय अवतारवाद तथा देवोपासना है। कहा गया है–**इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेद**। अर्थात, इतिहास और पुराणों द्वारा ही वेदार्थ का विस्तार करना चाहिए।

पुराण भारतीय ज्ञान, दर्शन, कला, समाज-व्यवस्था इत्यादि सब के आधार है।

गीता

श्रीमद्भगवद्गीता का विशेष रूप से उल्लेख विशेष समीचन है, क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता में हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के सभी मौलिक सिद्धान्तों के सूत्र निहित हैं। इसमें आवागमन के चक्र से निकल कर मोक्ष प्राप्त करना सबसे बड़ा आदर्श एवं पुरुषार्थ बतलाया गया है। मनुष्य को चाहिये कि वह व्यक्तिगत कर्मक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बनाये। यदि मनुष्य अपने स्वरूप को जान ले तो वह धर्मक्षेत्र का क्षेत्रज्ञ हो जाता है।

गीता में भगवान ने मनुष्य को चिरशान्ति का मार्ग बतलाया है और व्यावहारिक दृष्टि से कल्याणकारी कर्तव्य का उपदेश दिया है। कर्तव्य निष्काम भाव से किया जाये क्योंकि **कर्म करते हुए फल को इच्छा न रखने से कर्म का बन्धन नहीं रहता। यही कर्मयोग है।** व्यक्तिगत सुख-दुख, हानि-लाभ, जय-पराजय को समान समझ कर कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये। ऐसे ही निष्काम

कर्म से मोक्ष की भी प्राप्ति होती है। **काल से कोई नहीं बच सकता। शरीर को तो नष्ट होना ही है, किन्तु प्राप्त यश तथा कीर्ति व्यक्ति के संसार में न रहने पर भी रहती है।**

सब में अन्तर्यामी रूप से एक ही आत्मा है और वही लक्ष्य रहना चाहिये। आत्मा के इस एकत्व को जाननेवाला ही समदर्शी होता है। **गीता का उपदेश ब्रह्म के स्वरूपबोध के लिये परिपूर्ण है।** ब्रह्म के इस स्वरूपबोध के लिये गीता में भक्तियोग, ज्ञान-योग एवं कर्मयोग का सुंदर समन्वय है।

वस्तुतः गीता एक सार्वभौम जीवन-दर्शन की पुस्तक है और सार्वभौम जीवन दर्शन ही हिन्दू धर्म-दर्शन की विशेषता है।

● जब तुम दिव्यलोक की यात्रा पर जाओ तो कोई परिचय-पत्र साथ में न ले जाओ; द्वार पर दस्तक दे कर कहो कि मुझे परमात्मा से मिलना है, उसके नौकरों से नहीं। ●

—हेनरी डेविड थॉरो

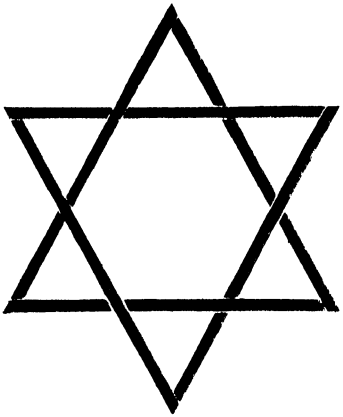

यहोवा का आदेश

यहूदियों के मूल धर्मग्रंथ का नाम है पुरानी बाइबिल अथवा ओल्ड टेस्टामेंट (The Old Testament)। उसके तीन भाग हैं– तोरा, नबी और नविश्ते। इन तीनों के बाद यहूदी धर्म में जिस ग्रन्थ का सबसे अधिक आदर है उसका नाम है तालमुद। तालमुद में यहूदी धर्म के विकसित विचार मिलते हैं।

दस आदेश

तोरा में यहोवा– यहूदियों के परमेश्वर–के अन्य आदेशों के अतिरिक्त वे दस आदेश (The Ten Commandments) भी है जो यहोवा ने हजरत मूसा को (जो ईसा से डेढ़ हजार साल पहले हुए थे) सिनाई पर्वत पर उस समय दिये थे जब हजरत मूसा साठ लाख यहूदियों को मिस्र से इस्राईल ले जा रहे थे। ये दस आदेश अथवा यहोवा की पवित्र वाणी ही यहूदी धर्म के मूल आधार हैं और इन्हीं के अनुसार हजरत मूसा ने यहूदी समाज की व्यवस्था की तथा राष्ट्र का विधान बनाया।

वे दस आदेश हैं–

१. मैं, यहोवा, तेरा परमेश्वर हूं।
२. मुझको छोड़ किसी अन्य ईश्वर को मत मान।
३. यहोवा का नाम अपने स्वार्थ के लिए न ले।
४. सप्ताह में छह दिन काम कर और सातवें दिन विश्राम कर। इस सातवें दिन को पवित्र दिन मान।
५. माता-पिता और गुरुजनों का आदर कर।
६. किसी की हत्या न कर।
७. व्यभिचार न कर।
८. चोरी न कर।
९. झूठी गवाही न दे।
१०. परायी सम्पत्ति, परायी स्त्री अथवा पराये पशु अथवा परायी किसी वस्तु का लोभ मन में न कर।

रक्तहीन क्रान्ति

हजरत मूसा ने परमेश्वर यहोवा के आदेश से यहूदी जाति

का उद्धार किया। उन्होंने अपने समय में महान रक्तहीन क्रान्ति की। यहूदियों पर होनेवाले असख्य अत्याचार को देख कर वे तिलमिला उठे। उन्होंने मिस्री सम्राट फरोहा के महल के सारे वैभव-सुख को ठुकरा कर जातीय उत्थान के प्रति स्वय को समर्पित कर दिया।

हजरत मूसा के वहुत पहले यहूदियों में अब्राम या इब्राहोम पैदा हुए थे। इब्राहोम के बेटे का नाम इसहाक था। इसहाक के एक बेटे का नाम याकूब था, याकूब के एक पुत्र का नाम यूसुफ और दूसरे का नाम यहूदा था। यहूदा से ही इस सम्पूर्ण जाति का नाम यहूदी पड़ा।

उस समय यहूदी मिस्र में रहते थे किन्तु इब्राहीम और यहोवा को मानते थे। मिस्री उन्हें बड़ी हेय दृष्टि से देखते थे। यूसुफ के बहुत समय बाद हजरत मूसा यहूदियों को मिस्र से इस्राईल ले गये। उन्होंने इस जाति को संगठित कर इसका उद्धार किया। यहूदी मानते हैं कि **इस सम्पूर्ण जगत में जो कुछ है उसमें केवल यहोबा है और यहोबा का आशीर्वाद उसे ही प्राप्त होता है जो सत्कर्म करनेवाला, निश्छलहृदय, दूसरों का भला चाहनेवाला, निष्कपट बोलनेवाला, और मन, वचन तथा कर्म से सबसे प्रेम करनेवाला हो।** यहूदी धर्म कहता है कि यदि तुम ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हो तो मनुष्य से प्रेम करो, हृदय में करुणा धारण करो, क्योंकि ईश्वर प्रेममय और करुणामय है। यहूदी धर्म में भूमि के प्रति वड़ा ही क्रान्तिकारी दृष्टिकोण अपनाया गया है जो आज के हमारे भूदान आन्दोलन से आश्चर्यजनक रूप से मिलता-जुलता है। क्या पता सर्व धर्म के प्रति समभाव रखनेवाले हमारे विनोबाजी ने वहीं से प्रेरणा ग्रहण की हो।

निर्देशक तत्व

यहूदी धर्म में दुखी, रुग्ण, असहाय एवं पीड़ित जनों की सेवा, श्रमनिष्ठा, सदाचार, निर्भयता, ब्रह्मचर्य, अस्तेय एवं शुचिमय जीवन की महत्ता स्थापित की गयी है। **यहूदी जाति अत्यन्त सतायी हुई पीड़ित जाति थी। अतः स्वाभाविक ही उसमें सामाजिक न्याय की व्यापक विवेचना की गयी है।** व्यापार में ईमानदारी, मजदूरों को पूरी मजदूरी देना, किसी की रोजी पर हमला न करना और न्यायपूर्ण रोजी कमाना, किसी पर क्रोध न करना, भूखे को खिलाना, पराया धन छीन कर धनवान न बनना, ब्याज न लेना, भूमि की उपज का दाना-दाना तोड़ कर घर न ले जाना इत्यादि सैकड़ों बातें हैं जो यहूदी नैतिकता के निर्देशक तत्त्व है।

इस प्रकार यहूदी धर्म न केवल कर्म बल्कि विचार को भी पवित्र रखने और मानव की सेवा में न्योछावर हो जाने की प्रेरणा देता है। यह मनुष्य को प्रत्येक प्रकार के अन्याय, शोषण एवं दमन से मुक्त सत्य, प्रेम, करुणा, सदाचार एवं श्रम पर आधारित समतावादी समाज की प्रतिष्ठा का संदेश देता है।

● एक धर्म उतना ही सच्चा है जितना दूसरा धर्म। ●

—रॉबर्ट बर्टन

पारसी धर्म

ईश्वरीय प्रेम की वर्षा

पारसियों के ईश्वर हैं होरमज्द और होरमज्द को सबसे अधिक प्रिय है सत्य। यह सत्य ही पारसी धर्म की आधारशिला है। यहां कहा गया है कि मनुष्य का जन्म ही हुआ है सत्कार्यों के लिये– मन, वाणी और कर्म से सत् को अपनाना।

देवत्व और राक्षसत्व

पारसी धर्म में देवत्व और राक्षसत्व की कल्पना की गयी है– सत् और ऊषा की ओर बढ़नेवाला दवत्व अर्थात होरमज्द की ओर बढ़ता है तथा असत् का आचरण करनेवाला राक्षसत्व अर्थात अहिरामन की ओर जाता है तथा सर्वनाश में गिरता है। सत्पथ का अनुसरण करनेवाला ही विश्वव्यापी प्रेम का सन्देश-वाहक बनता है। इस सत् का बाह्य प्रतीक है अग्नि। इसीलिए पारसी अग्नि की उपासना करते हैं। उनकी मान्यता है कि अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए जो व्यक्ति सत्य से पवित्र करके समिधा लाता है उस पर अग्निदेव अपना आशीर्वाद बरसाते हैं। पारसी लोग अग्निदेव की स्तुति इन शब्दों में करते हैं – हे अग्निदेव, हम होरमज्द के पुत्र तेरे अधिक-से-अधिक निकट पहुच रहे हैं। हम तुझे प्रणाम करते हैं। हम तेरी प्रार्थना करते हैं। हम सद्विचार, सद्वचन और सत्कर्म द्वारा तेरे निकट पहुंचते हैं।

पारसी धर्म के संस्थापक हैं महात्मा जरथुश्त्र। उनका जन्म ईसा से ६०० वर्ष पूर्व पूर्वी ईरान और कास्पियन समुद्र के दक्षिण-पश्चिम में स्थित माडिया नामक जाति में हुआ। जब अरबों ने उस स्थान को जीत लिया तो कुछ पारसी अपने धर्म की रक्षा के लिये खोरासान की पहाड़ियों में भाग गये। लेकिन जब वहां भी आक्रमण होने लगा तो उन्होंने देश त्याग दिया और जहाज में बैठ कर रवाना हो गये। उनका जहाज भारत के पश्चिमी किनारे पर स्थित दीव नामक टापू में आ लगा और फिर वे गुजरात के संजाण नामक नगर में आ कर रहने लगे। धीरे-धीरे वे भारतीय समाज के साथ एकरस हो गये। भारतीय समाज के विकास में पारसियों का बड़ा योगदान है।

प्रभु जरथुश्त्र ने सतहत्तर वर्ष की आयु में अपना बलिदान कर दिया। वे बलख के मंदिर में वेदी पर प्रार्थना कर रहे थे कि विरोधियों ने उन पर हमला कर उनकी हत्या कर दी। उन्होंने उस समय अपने हत्यारों से कहा– "होरमज्द तुम्हें क्षमा करे, जिस तरह मैं तुम्हें क्षमा करता हूं।"

अवेस्ता

अवेस्ता पारसियों का धर्मग्रन्थ है। इसके ६ भाग हैं जिनमें यस्न अथवा गाथाएं सबसे पुरानी हैं और इसी में महात्मा जरथुश्त्र के मुख से निकली पवित्र वाणियाँ हैं। कहते हैं कि तीस वर्ष की आयु में जब जरथुस्त्र द्रोण पर्वत पर ध्यान कर रहे थे तब उन्हें ईश्वर के दर्शन हुए और उनके मुख से पवित्र गाथा फूट पड़ी।

गाथाएं

गाथाएं पांच हैं–

(१) **अहुनवइति गाथा**– इसमें मुख्यतः सत् और असत् की विवेचना की गयी है। शुरू में दो मैन्यु अर्थात मनुष्य की दो स्थितियां एक साथ प्रकट हुईं– सत् और असत्। इनमें से एक ने जीवन दिया और दूसरे ने मृत्यु। यह स्थिति मनुष्य के जीवन के अन्त तक जारी रहेगी।

(२) **उश्तवइति गाथा**– इस गाथा में कहा गया है कि जो मनुष्य दूसरों को सुख देता है उस पर सर्वशक्तिमान होरमज्द का आशीर्वाद बरसता है।

(३) **स्पॅंतामइन्युश् गाथा**– इस गाथा में धरती माता से प्रार्थना की गयी है कि अन्न की उपज बढ़ाने के लिए हम हमेशा

मेहनत करें। हे धरती माता! तू ही हमें शक्ति देती है, प्रेम और सत्य देती है और सत्य के द्वारा धरती में उपज बढ़ती है। सबसे उत्तम वह आदमी है जिसकी जीभ से प्रेमभरे शब्द निकलते है।

(४) **वोहूक्षथ्र गाथा**– इस गाथा मे सच्चे भक्त के लक्षण बतलाये गये हैं। सच्चा भक्त वह है जो अषा पर–सत्य पर–चलता है।

(५) **वहिश्तोइश्ति गाथा**– इसमें वर-वधू कोस त्य, धर्म और प्रेमपूर्वक जीवन व्यतीत करने की सीख दी गयी है। कहा गया है कि जब नवदम्पति में सच्चा प्रेम होगा तो सपूर्ण जगत पर उसका सुन्दर प्रभाव पड़ेगा।

अवेस्ता के यस्न भाग में कुल ७२ हा अर्थात अध्याय हैं जिनमें १७ हा गाथाओं के हैं।

अवेस्ता में दीनों पर दया करने पर बहुत जोर दिया गया है और इससे सम्बन्धित मंत्र जगह-जगह आता है, जिसमें बताया गया है कि दीनों पर दया करने से दीनदयालु प्रसन्न होते हैं। **गरीबों और दुखियों की निष्काम भाव से सेवा और सहायता करनेवालों पर ईश्वरीय प्रेम की वर्षा होती है।**

अग्नि के अतिरिक्त पारसी अन्य जिन देवताओं की उपासना करते हैं वे हैं चन्द्र, सूर्य और जल। जल की और उपज की देवी हैं अनाहिता।

अन्न बोने और खेती करने को ईश्वरीय कार्य माना गया है। **जो आदमी बोता है वह सत्य बोता है। अन्न बोना धर्म को आगे बढ़ाना है।**

दस कर्तव्य

धर्माचरण के लिए मनुष्य के दस कर्तव्य बतलाये गये हैं–पर-निन्दा से बचना, अक्रोध, लोभ न करना, चिन्ता न करना, विषय-वासना से अलिप्तता, ईर्ष्या न करना, निरालस्य, उद्यम, पराई सम्पत्ति से उदासीनता, पराई स्त्री से दूर रहना।

शत्रुओं को मित्र बनाना, पशुओं पर दया करना, पाप का प्रायश्चित्त करना, मन में किसी के प्रति बदले की भावना न रखना, कंजूसी और उजड्डपन छोड़ना, कोई चीज सीखने के बाद उसे अमल में लाना, केवल सत्कर्मों का ही संग्रह करना, किये हुए पापों के लिये पश्चात्ताप करना, मांस-मदिरा को हाथ न लगाना–इन रास्तों पर चलना होरमज्द के मार्ग पर चलना है और **होरमज्द का मार्ग ही धर्म का एकमात्र मार्ग है।**

आइये, पारसियों की भांति हम भी ईश्वर से यह वरदान मांगें–

अनुमतॅअे दअेनयाइ
अनुख्तॅअे दअेनयाइ
अनु-वर्श्तॅअे दअेनयाइ ॥

मैं धर्म के अनुसार सोचू, धर्म के अनुसार बोलूं और धर्म के अनुसार करूं।

प्राणिमात्र से मैत्री

जैन धर्म बौद्ध धर्म से प्राचीन है। शास्त्र के अनुसार इसकी परम्परा भगवान ऋषभदेव से है। वर्द्धमान महावीर इस परम्परा के चौबीसवें तीर्थंकर थे।

वर्द्धमान महावीर का जन्म ईसा से ५८८ साल पूर्व वैशाली गणतंत्र के कुण्ड ग्राम में हुआ था। युवावस्था में ही सारा राजसी सुख त्याग कर वे तप करने वन में चले गये। बारह वर्ष तक मौन-व्रत धारण कर उन्होंने तप किया और अन्त में कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने चतुर्विध संघ की स्थापना की और जनता में उपदेश देना शुरू किया।

महावीर ने प्राणिमात्र से मैत्री की प्रेरणा दी। वे अहिंसा के मूर्तिमान प्रतीक थे। अपने युग में फैले हुए जात-पांत, ऊंच-नीच एवं धर्माडम्बर का इन्होंने खंडन किया और आत्मशुद्धि एवं आत्मविकास की श्रेष्ठता प्रतिपादित की।

महावीर का आविर्भाव ऐसे युग में हुआ था जब धर्म रूढ़ि-ग्रस्त हो चुका था और समाज में ढोंग का बोलबाला था। महावीर ने समाज में फैले अंधविश्वास, धर्मांधता और धार्मिक कर्मकाण्ड के नाम पर आडम्बर और अपव्यय की प्रवृत्ति पर प्रहार किया। उन्होंने मूर्च्छित समाज को झकझोर कर उनमें जागरण का शंख फूका। मानवता लक्ष्यहीन हो कर घुटन का अनुभव कर रही थी। महावीर ने विखण्डित मानवता को पूर्ण इकाई के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिये ढोंग और आडम्बर के स्थान पर समाधिमार्ग का प्रतिपादन किया, समर्पण के स्थान पर संकल्प की प्रेरणा दी और कहा कि **जीव स्वयं ही आत्मा और परमात्मा दोनों है**।

महावीर ने मनुष्य की शुद्ध आत्मा को सबसे श्रेष्ठ माना और यहां तक कहा कि **मनुष्य की शुद्ध आत्मा ही परमात्मा है**। शुद्ध अर्थात जाग्रत आत्मा। उन्होंने कहा कि पहले अन्तर्जगत को सुषुप्तावस्था से जगाओ–अन्तर्जगत में आत्मा के निकट पहुंच कर तन्द्रा को भंग करो, क्योंकि यदि अन्तर्जगत सोया पड़ा है–तन्द्रिल अवस्था में है–तो दृश्यमान जगत में किया गया उपचार निरर्थक सिद्ध होगा। इसीलिये महावीर ने बाहर कहीं न जा कर आत्मा की ओर लौटने का आह्वान किया। जैन धर्म के कुछ पारिभाषिक शब्द अपने विशेष अर्थ में इसी रहस्य का संकेत करते हैं। जैसे, उपवास–अर्थात वापस लौट कर आत्मा का बोध करना।

ज्ञानी जीव अपने चिन्तन का लक्ष्य बाह्य पदार्थों को न बना कर आत्मा को ही बनाता है। अज्ञानी जीव सुख-दुख का कारण अन्य पदार्थों को मान कर उनमें इष्ट-अनिष्ट बुद्धि करता है, किन्तु ज्ञानी जीव उसका कारण स्वयं को ही मानता है। एक जैन ग्रंथ में कहा है–

स्वयं कृतं कर्मयदात्मना पुरा फलं तदीषं लभते शुभाशुभम्।

सेवा-धर्म

जैन-साहित्य में सेवा-धर्म की विशद व्याख्या की गयी है और कहा गया है कि **एक-दूसरे के आत्मविकास में सहयोग करना भी सेवा है।**

अनेकान्त और स्याद्वाद

अनेकान्त और स्याद्वाद जैन विचारों का मूल है। जगत में चित् तथा अचित् दो तत्त्व हैं। दोनों का ठीक-ठीक विचार ही विवेक है। भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखने पर जगत में, धर्म में भेद दिखायी पड़ते हैं, विरोध दिखायी पड़ते हैं। लेकिन अनेकान्त को माननेवाला समभाव को मानता है। उसके दृष्टिकोण में सामंजस्य आ जाता है और समस्त भेदों का समन्वय हो जाता है। वह सब जीवों को एक सदृश मानता और किसी से घृणा-द्वेष नहीं करता। जगत मे दूर अन्य विन्दु है जहां बुद्धि साम्य की स्थिति ग्रहण कर लेती है।

इसी समदृष्टि या समभाव को स्याद्वाद कहते हैं।

अहिंसा और तपस्या

जैन दर्शन में जिस प्रकार अनेकान्त और स्याद्वाद–ये दो विचार

सर्वोपरि हैं उसी प्रकार अहिंसा और तपस्या जैन आचारों के दो सर्वोपरि सिद्धान्त हैं। मनुष्य तो क्या किसी भी जीव की हिंसा वर्जित है। यहां तक कि हिंसा के खयाल को मन में भी लाना बहुत बड़ा पाप है। अहिंसा पर इतना अधिक जोर जैन धर्म में प्राणियों के हित के लिये ही दिया गया है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में अहिंसा का जितना ही अधिक पालन करेगा मनुष्य उतना ही अधिक सुखी होगा। जैन धर्म का यह अहिंसावाला तत्त्व ही बौद्ध धर्म में आया।

इसी प्रकार जैन धर्म में तपस्या पर बड़ा जोर दिया जाता है। जैन मुनियों के लिये बारह प्रकार के तप बताये गए हैं। तपस्या का मूल आधार सदाचार को बतलाया गया है। इस सदाचार के अन्तर्गत पांच प्रकार के व्रत हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इसी प्रकार पांच प्रकार की समितियां अर्थात संयमित आचार और सजग व्यवहार हैं। जैसे ईया समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-निक्षेपण समिति, उत्सर्ग समिति और गुप्ति समिति। इन्हीं पांच समितियों के अन्तर्गत छोटे-छोटे जीवजन्तुओं तक को बचा कर चलना, कोमल, सच्चे, न्यायपूर्ण, निष्कपट, क्रोध, अभिमान से रहित वचन बोलना, स्वच्छता रखना, मन, वाणी और काया को निर्दोष रखना इत्यादि आते है।

कषाय

क्रोध, अभिमान, लोभ, माया इत्यादि से ग्रस्त जीव अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सकता, क्रोधी मनुष्य तो अपने शरीर के वस्त्रों को भी नहीं सम्हाल पाता है— **नो संवृणोति परिधानमपि स्वकीयं।**

और मानी व्यक्ति संसार के भय का विनाश करनेवाले शांत, धीर जिनेन्द्र के दर्शन नहीं करता है–

भवभयहरं शान्तं न धीरं जिनं न विलोकते ।

इसी प्रकार लोभासक्त व्यक्ति क्या-क्या नहीं करता है–

लोभेनानुरतेन चेतसि सदा किं किं न कुर्याज्जिन : ।

और माया ! माया से कोई भी अभिलषित वस्तु प्राप्त नहीं होती है और न ही माया किसी के लिये सुखदायी है–

न प्राप्यते किंचिदपीष्टमन्यदतोहि
माया सुखदा न कस्यचिद् ।

क्रोध, मान, लोभ और माया को ही जैन धर्म में 'कषाय' की संज्ञा दी गयी है । कषायवान मनुष्य उन तीन उपलब्धियों से वंचित रह जाता है, जिसे जैन सिद्धान्त में रत्नत्रय कहा जाता है।

रत्नत्रय

रत्नत्रय हैं–सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र । इन तीनों रत्नों के मिलने से ही मोक्ष का मार्ग मिलता है । किन्तु कषायों के कारण मनुष्य इसी संसार में अनन्त बार जन्म लेता और अनन्त दुखों को प्राप्त करता है ।

कर्म-सिद्धान्त

जैन धर्म में कर्म के सिद्धान्त की पूरी महत्ता प्रतिपादित की गयी है । कहा गया है कि प्राणियों के दुख का कारण है अपना-अपना कर्म और कर्म के बन्धन से मुक्ति ही मोक्ष है । राग और द्वेष से पृथक हो कर ही कर्म के बन्धन से छुटकारा पाया जा सकता है ।

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो ।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ।।

जो यह संसारी जीव है उसके राग-द्वेष आदि अशुद्धभाव होते हैं, उनसे आठ कर्मों का बन्धन होता है और कर्मों से एक गति से दूसरी गति प्राप्त होती है ।

गतिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायन्ते ।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा ।।

गति को प्राप्त जीव के शरीर होता है, शरीर से इंद्रियाँ, इंद्रियों से विषय और विषय से राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं ।

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं ।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति ।

चार प्रकार के प्रत्यय (मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग) अष्ट कर्मों के हेतु हैं । उनका कारण रागादि विभाव है। जब इनका भी अभाव हो जाता है तब कर्म-बन्ध रुक जाता है ।

कर्म के बन्धन से छुटकारा पाने पर शांति उपलब्ध हो सकती **है—शांति अर्थात समस्त कर्मों से रहित आत्मा, और आत्मा की इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं ।**

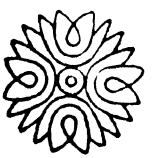

आत्त दीप, आत्त शरण...

भगवान बुद्ध ने अपना पहला धर्मोपदेश सारनाथ में दिया और अस्सी वर्ष की आयु तक तत्कालीन जनभाषा पाली में अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। बुद्ध का आविर्भाव विश्व इतिहास का एक उज्ज्वलतम अध्याय है। उन्होंने मानव-जीवन को बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की एक अभूतपूर्व प्रेरणा से

आप्लावित कर दिया । बौद्ध धर्म संसार में जहां-जहां फैला– आज भी संसार के एक-चौथाई लोग इस धर्म को माननेवाले हैं– इसने करोड़ों प्राणियों को कल्याण का संदेश दिया – बौद्ध धर्म, जिसका मूल आधार है सत्य (सत्य ही धर्म का प्राण है और उसी से विश्व-प्रेम का उदय होता है), अहिंसा, प्रेम, करुणा, सेवा और त्याग । स्वयं बुद्ध का जीवन इन मानवीय विभूतियों से परिपूर्ण था ।

जिस समय बुद्ध का आविर्भाव हुआ था उन दिनों भारतवर्ष वंशगत एवं जातिगत रूप से छोटे-छोटे प्रादेशिक राज्यों में बंटा हुआ था । प्राचीन बुद्धग्रंथ एवं जातक कथाओं में इन छोटे-छोटे राज्यों का उल्लेख हुआ है । ये राज्य प्रायः आपस में कलह करते थे । सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक क्षेत्र में पूर्ण अव्यवस्था फैली हुई थी । अंधविश्वास प्रबल थे । बुद्ध ने न केवल विभिन्न राज्यों के आपसी युद्ध रोक कर उनमें सौमनस्य लाने का प्रयत्न किया अपितु समाज के विभिन्न क्षेत्रों में फैली अराजकता को दूर कर दिया । उन्होंने कहा कि **धर्म की बुनियाद अंधश्रद्धा नहीं बल्कि खुली दृष्टि से अन्तःकरण को शुद्ध करना है ।** उन्होंने वैदिक धर्म की रूढ़ियों, यज्ञ-याग, वर्णभेद, जाति-पांति एवं चारों ओर फैली हुई हिंसा के अनाचरण के विरुद्ध एक लोकक्रान्ति की और इतिहास को नया मोड़ दिया ।

जीवन का तत्वज्ञान

इन्होंने कहा कि **अपने सामने आनेवाले किसी भी विचार को तर्क की कसौटी पर कसो । किसी के प्रति श्रद्धा के कारण अथवा परम्परा से चली आ रही होने के कारण ही किसी विचार को स्वीकार मत कर लो ।**

बौद्ध धर्म कहता है कि मनुष्य के हृदय में प्राणिमात्र के सुख और कल्याण की भावना हो। वह सरल, विनम्र एव मृदुभाषी बने। वह दोषपूर्ण कार्य न करे। उसकी इंद्रियां चंचल न हों। वह थोड़े में सतोष करनेवाला हो। वह किसी का अपमान न करे, किसी को दुख पहुंचे ऐसा कुछ न करे, शीलवान हो और उसका हृदय समस्त प्राणियों के प्रति असीम प्रेम से भरा हो।

हिंसा न करना, चोरी, दुराचार, मिथ्यावचन, चुगली, कटु वचन, अनीति वचन, परायी वस्तुओं के प्रति लोभ, अन्यों के प्रति द्वेषपूर्ण संकल्प, उलटी धारणा इत्यादि शरीर, वाणी और मन के अधर्माचरण हैं।

बुद्ध ने समृद्ध और उन्नत जीवन का मार्ग दिखाया। उन्होंने कहा कि **जीवन की अपेक्षा जीवन का तत्वज्ञान गतिमान रहे और उसके लिये निरन्तर चिन्तन एवं मनन हो।** उन्होंने जीवन को निरर्थक कभी नहीं बताया अथवा जीवन से भागने का उपदेश नहीं दिया। उनका स्वयं अपना जीवन ही इसका आदर्श था– **उन्होंने योगी, ज्ञानी एवं संसारत्यागी हो कर भी अपना संपूर्ण जीवन मनुष्य में रह कर मनुष्य के प्रति समर्पित कर दिया।**

बुद्ध धर्म की लहर ने मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को विकसित किया और प्रत्येक क्षेत्र में एक नयी निष्ठा एवं साधना परिलक्षित हुई–साहित्य, दर्शन, शिल्प, वास्तु, स्थापत्य जगत में अमर कृतियां प्रकट हुई। बुद्ध के विचारों ने केवल भारत में ही नहीं बल्कि अन्य अनेक देशों के धर्म, संस्कृति एवं कला के क्षेत्र में नये युग का निर्माण किया।

विराट् की खोज के लिये

उन्होंने युवावस्था में समस्त राजसुख त्याग दिया—एक विराट की खोज के लिये। वह खोज क्या थी? – संसार के ये सारे क्षणभंगुर एवं परिवर्तनशील दृश्यों के विनाश के बाद कुछ शाश्वत तत्व अवश्य है और मनुष्य की वृत्ति एवं आत्मा उस शाश्वत का ही अंश है—मुझे उसी की खोज करनी चाहिये। .... निरंजना नदी के तट पर गौतम के हृदय में जब ज्ञानज्योति प्रदीप्त हुई, उन्हें बोध हुआ और वे बुद्ध हुए तब उन्हें शाश्वत सत्य का ही दर्शन हुआ था और उन्हें मृत्यु से अमरत्व की ओर तथा अशाश्वत से शाश्वत की ओर जाने का मार्ग मिल चुका था।

धर्मचक्र प्रवर्तन

इसके पश्चात् धर्मचक्र-प्रवर्तन आरंभ हुआ। सारनाथ की तपोभूमि में जब उन्होंने अपना पहला प्रवचन दिया उस दिन आषाढ़ी पूर्णिमा थी। अपने प्रथम प्रवचन में उन्होंने कहा कि **धर्ममय जीवन व्यतीत करनेवाले को मर्यादाबद्ध जीवन व्यतीत करना चाहिये और मर्यादाबद्ध जीवन व्यतीत करने के लिए मध्यम मार्ग सर्वश्रेष्ठ है** — 'मज्झिम निकाय'। उन्हीं के शब्दों में, "वीणा के तारों को इतना ढीला मत छोड़ो कि उनसे स्वर ही न निकले और उन्हें इतना कसो भी नहीं कि वे टूट जायें।" जीवन के लिए इसी मज्झिम निकाय को उन्होंने श्रेयस्कर बतलाया। शरीर भोग-विलास में इतना न डूब जाये कि वह निष्पंद, जड़ हो जाये और न शरीर को तपस्या इत्यादि द्वारा अत्यधिक पीड़ा दे कर शुष्क, निश्चेष्ट बना दिया जाये। इन दो अतियों के निवारण द्वारा ही

शांति मिल सकती है, ज्ञान मिल सकता है। इसके लिये उन्होंने अष्टांगिक मार्ग सुझाया। अष्टांगिक मार्ग निम्नलिखित हैं।

अष्टांगिक मार्ग

१. **सम्यक ज्ञान**–आर्य सत्यों (चार सत्य–दुख, दुख का हेतु, दुख से मुक्ति और दुख से मुक्ति की ओर ले जानेवाला मार्ग) का समुचित ज्ञान।

२. **सम्यक संकल्प**–दृढ़ निश्चय।

३. **सम्यक वाणी**–सच बोलना।

४. **सम्यक कर्म**–हिंसा, द्रोह और बुरे आचरण से बचना।

५. **सम्यक आजीविका**–न्यायपूर्ण सत्पथ पर चलते हुए जीविकोपार्जन करना और जीवन चलाना।

६. **सम्यक व्यायाम**–सत्कर्म के लिये सतत उद्योग करना।

७. **सम्यक स्मृति**--मानसिक संताप, जैसे लोभ इत्यादि, से बचना।

८. **सम्यक समाधि**–राग-द्वेष इत्यादि से पृथक हो कर चित्त को एकाग्र करना। अष्टांगिक मार्ग ग्रहण करने से मनुष्य में प्रज्ञा का उदय होता है और निर्वाण की प्राप्ति होती है।

तृष्णा से चालित हो कर, संस्कारों से संयुत् हो कर ही मनुष्य इस अनादि संसार में बार-बार जन्म-मरण भोगता हुआ संयोग-वियोग के असह्य दुख से कातर बना आंसू बहाता रहता है। **तृष्णाओं-वासनाओं-संस्कारों से निर्वेद प्राप्त करना ही निर्वाण है। इस निर्वाण के लिए किसी बाह्य अवलंब की आवश्यकता नहीं, क्योंकि तृष्णाओं और वासनाओं से मुक्ति तो स्वयं मनुष्य के**

अपने ही हाथ में है। इसके लिये धर्म के अतिरिक्त और किसी की शरण में जाना अपेक्षित नहीं।

अपने आपको जीतो

अपना उद्धार तो अपने हाथ में है। मनुष्य स्वय अपना स्वामी है। भला कोई दूसरा कैसे उसका स्वामी हो सकता है– **अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।** अतः अपने आपको जीतो। बुद्ध ने निर्वाणसूत्र में कहा है– **आत्तदीप, आत्त-शरण, धम्मदीप, धम्मशरण।**

अतः जिन्हें आत्मा ही आधार मालूम होती है अथवा जिन्हें अन्य आधार न लग कर आत्मा ही आधार मालूम है, ऐसा बनो। जन्म-मृत्यु ही इस संसार का सबसे बड़ा दुख है। ज्ञानप्राप्ति और बोध से उस दुख से छुटकारा पाया जा सकता है। इस बोध की प्राप्ति के लिए बाह्य आश्रय नहीं वरन आत्मा, धर्म और सत्य का आश्रय ही उपयोगी है। जन्म, मृत्यु, राग, द्वेष आदि जीवन के विरोधी और विसंगत अंग हैं और इन सबके कारण हमें दुख होता है। सारे संसार में विरोध भरा है और इन विरोधों से छुटकारा पाना ही मन की शांति है। व्यावहारिक अर्थ में मन की इसी अवस्था का नाम 'मुक्ति' अथवा निर्वाण है।

इस प्रकार बौद्ध धर्म ने जो जोत जगायी वह युग-युगों से मानव-कल्याण के पथ को प्रकाशित कर रही है। मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव उत्पन्न करनेवाले समस्त कारणों–जो स्वार्थ, लिप्सा, आत्मश्लाघा, पाखंड एव दभ से आकार ग्रहण करते हैं– की व्यर्थता प्रमाणित कर उसने एक सीधा, सरल, सहज एवं करुणा का मार्ग दिखाया। बौद्ध सघ मे सबका स्वागत किया

गया–ब्राह्मण, शूद्र, पुण्यात्मा, पापी, ऊंच, नीच, सती, वेश्या–कोई भेदभाव नही ।

किसी को सतानेवाला, दंड देनेवाला मर कर भी सुख नहीं पाता । जो दूसरे को सताता है, दूसरे प्राणियों की हिंसा करता है वह इस लोक में अपनी जड़ आप खोदता है ।

वैर से वैर नहीं मिटता–एक वार जो वैर के चंगुल में फंस जाता है उसे कभी उससे छुटकारा नहीं मिलता–**वेर ससंग्गसंसट्ठो वेरा सो न पमुच्चति ।**

प्रेम से क्रोध को जीतो, भलाई से बुराई को जीतो, सत्य से झूठ को जीतो और करुणा से निर्दयता को जीतो ।

● अंधविश्वास को दूर कर देने से धर्म दूर नहीं हो जाता । ●

— सिसरो

कन्फ्यूत्सी धर्म

सचाई का रास्ता

चीन के दो महात्माओं—लाओत्से और कन्फ्यूशीयस—ने चीन को ही नहीं संसार को दो अनूठे धर्म दिये— ताओ धर्म और कन्फ्यूत्सी धर्म। मानव प्रेम, मानव - सदाचार एवं मानवीय अखंडता की भावना का ये दोनों धर्म आज भी विश्व को संदेश दे रहे हैं।

कन्फ्यूशीयस का कहना है कि **दूसरों के साथ वैसा व्यवहार मत करो जैसा कि तुम अपने लिए नहीं चाहते हो**– इस एक सरल वाक्य में कन्फ्यूशीयस ने मनुष्य के कर्तव्य की बड़ी गूढ़ बात कह दी है और यही कन्फ्यूत्सी धर्म का मूल सूत्र है– **तुम्हें जो चीज नापसंद है दूसरे के लिये हरगिज मत करो ।**

पांच मुख्य बातें

कन्फ्यूशीयस ने मानवीय गुणों पर सबसे अधिक जोर दिया और कहा कि जन्म से सभी मनुष्य अच्छे होते है । उन्होंने मनुष्य को सन्मार्ग पर चलने के लिए पांच मुख्य बातों पर जोर दिया– प्रेम, न्याय, नम्रता, विवेक और ईमानदारी ।

कन्फ्यूशीयस ने कहा कि सबसे प्रेम करो और प्रेम करने क तरीका है कि फल के बजाय कर्म पर अधिक ध्यान दिया जाये । **प्रेम अपने आप में ही अपना फल है ।** प्रेम से सभी चीजों में सुन्दरता आ जाती है । **जिसके हृदय में प्रेम भरा रहता है वह कभी कोई गलत काम नहीं करता ।**

इसके बाद उन्होंने सचाई पर जोर दिया और कहा कि मनुष्य को सचाई और सरलता के साथ अपने को सुधारने की कोशिश करनी चाहिये । सच्चा आदमी साहसी और कर्मठ होता है ।

कन्फ्यूशीयस ने अपने इन्हीं आदर्शो से अपने चतुर्दिक उच्चा-दर्शों की अमिट छाप छोड़ी और जिस कार्य में हाथ भर डाला उसमें कार्य-व्यवहार का एक उच्च मानदंड स्थापित किया । जब उन्हें अपराध-मंत्री बनाया गया तो उन्होंने कैदियों के अन्दर अच्छाई की ऐसी प्रेरणा भर दी कि दो वर्ष के भीतर सारे जेल

खाने खाली हो गये, अदालतों में जजों के पास कुछ करने को ही नहीं रहा। चाहे उन्होंने सरकारी भण्डारी का कार्य किया, खेतों का निरीक्षक बने अथवा लू प्रदेश के शासक के पद पर कार्य किया– सब जगह उन्होंने जनता में अच्छाई की कुछ ऐसी प्रेरणा भर दी कि लोग अपने आप ही अच्छे बन गये। उनकी मान्यता थी कि **जनता सिर्फ कानून से नहीं चलती। सद्गुणों से जनता को राह दिखाया जा सकता है और जनता अपना सुधार अपने आप कर लेगी।** जो नादान है, उसे दण्ड देना गलत है।

लेकिन अंत में कन्फ्यूशीयस राजकीय षड्यंत्रों के शिकार हो गये और उन्हे दर-दर भटकना पड़ा। ८३ साल की उम्र में ईसा से ४७८ वर्ष पूर्व कन्फ्यूशीयस का देहान्त हो गया।

कन्फ्यूशीयस का कहना था कि जो पहले अपना सुधार न करे उसे दूसरे को सुधरने के लिये कहने का क्या अधिकार है? **जो भीतर से ऊंचा उठता है उसे बाहर से ऊंचा उठने की आवश्यकता नहीं।** छोटी-छोटी तुच्छ बातों पर ध्यान नही देना चाहिये क्योंकि इससे बड़े काम के लिये अवकाश नहीं रह जाता।

सचाई का रास्ता

कन्फ्यूशीयस ने कहा कि महान पुरुष वह है जो किसी भी परिस्थिति में क्षण भर के लिये भी सचाई को नहीं छोड़ता, **बुद्धिमान वह है जो सही रास्ते पर चलता है और सही रास्ता है सिर्फ उसी चीज की इच्छा करना जो उचित है।** बुद्ध की भांति कन्फ्यूशीयस ने भी मध्यमार्ग को श्रेयस्कर माना। कन्फ्यूशीयस के अनुसार पांच सद्गुण होते हैं–

१. जेन–सदाचार।

२. चुन जू–सद्व्यवहार ।
३. ली–विवेक ।
४. ते–नैतिक साहस, ईमानदारी और उदारता ।
५. वेन–अपने गुणों पर डटना और सबके प्रति दया ।

इसी प्रकार पांच कर्तव्य बतलाये गये है–

१. पति और पत्नी का ।
२. संतान और माता-पिता का ।
३. मित्र और मित्र का ।
४. बड़े और छोटे भाई का ।
५. राजा और प्रजा का ।

मैनशियस कन्फ्यूशीयस का सबसे बड़ा अनुयायी हुआ ।

कन्फ्यूशीयस ने पारिवारिक प्रेम पर भरपूर जोर दिया और कहा कि **संतान का प्रेम, पत्नी का प्रेम वीणा के स्वर की भांति मधुर होता है ।**

● अच्छा जीवन ही एकमात्र धर्म है । ●

–थॉमस फुलर

ताओ धर्म

सबसे बड़ी सत्ता प्रेम की

ताओ धर्म के संस्थापक हैं लाओत्से। 'लाओत्से' शब्द का अर्थ होता है बूढ़ा बालक। आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले लाओत्से का जन्म चीन के त्च्यू प्रांत में हुआ। ये शुरू से ही ध्यान और चिंतन-मनन में रहा करते थे। ये सीधे-सादे सरल व्यक्ति थे और जब चीन में राजनीतिक दाव-पेंच बहुत बढ़ गये, ये विरक्त हो कर अन्यत्र चले गये। किंतु चीनवासियों को अपनी अमर कृति **ताओ तेह किंग** दे गये।

ताओ की रीति

ताओ का अर्थ है परब्रह्म। यही विश्व का मूल है, अनादि-अनंत। यह सबसे ऊपर है ओर इसका कोई नामरूप नहीं है। ताओ को पाने का सहज मार्ग है तेह जो कि प्रेम का मार्ग है। **प्रेम का शासन–प्रेम की सत्ता ही सबसे बड़ी सत्ता है।** उस अग्राह्य और अचिन्त्य ताओ का अनुसरण ही महान धर्म है। वही सभी चीजों का आदि कारण है। समुद्र और नदियों के लिये जैसे घाटियां हैं, उसी प्रकार दुनिया के लिये ताओ है। आसक्ति, प्रपंच का त्याग, छोटे में बड़ा देखना, आघात के बदले दया–यह ताओ की रीति है।

ताओ धर्म के अनुसार जानबूझ कर कुछ करना नही है। ज्ञानी कुछ करता नही है। सबकुछ अपने आप होता चलता है। **जिस प्रकार फूल सुगंध स्वयं नहीं बिखेरता वरन सुगंध तो अपने आप बिखरती है उसी प्रकार गुण अपने आप सहज भाव से विकसित होते हैं।**

पूर्ण कौन है?

ताओ धर्म मानता है कि प्रकृति के दो पहलू हैं–पिन और यांग –भला और बुरा, प्रकाश और अंधकार। ये एक दूसरे के पूरक हैं। यही बात जीवन के साथ भी है और इन दोनों को मिला कर ही जीवन पूर्ण होता है। धूल की भांति नम बन जाने, सादगी पर चलने, विवादरहित हो जाने, मानापमान को समभाव से लेने और **बिलकुल रीता–कोरा–हो जाने से ही ताओ को जाना जा सकता है। अपने को खाली करनेवाला ही परिपूर्ण हो सकता है।**

ताओ धर्म में तीन कीमती चीजें मानी गयी हैं—मार्दव, परिमितता और विनयशीलता ।

निर्माण और संरक्षण, अकर्तापन, निष्काम कर्म ही परम धर्म है ।

अपने आपको जाननेवाला अन्तर्ज्ञानी है और अपने आपको जीतनेवाला ही परम सामर्थ्यवान है । संतुष्ट रहनेवाले का नाश नहीं होता, शांत रहनेवालों पर कभी संकट नहीं आता ।

आदर्श राज्य

चालीस साल की उम्र में लाओत्से को सरकारी नौकरी मिली थी । अतः उन्हें शासन की रीति-नीति का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था । तत्कालीन राजनीति एवं शासन-व्यवस्था से उन्हें एकदम अरुचि हो गयी और इसका उनके मन पर प्रभाव पड़ा। अतः उन्होंने आदर्श राजा और आदर्श शासन-व्यवस्था के बारे में भी बहुत-सी बातें लिखी थी जो आज भी किसी राज्य के मार्गदर्शक बन सकते है । **लाओत्से ने प्रेम के शासन में ही स्थायी शासन माना** । ताओ उपनिषद में कहा है—जो जनता के हृदय पर राज्य करे वही सच्चा राजा है । जो जनता के दुःख सहता है वही सच्चा राजा है । उदार राज्य वह है जो न तो किसी का अपमान करता है, न किसी का दिल दुखाता है। स्वतंत्र और उदार सरकार लोगों को मौका देती है कि वे खुद अपना विकास करें । ताओ का कहना है कि **धर्मशील पुरुष राष्ट्र पर शासन करें** ।

ताओ धर्म युद्ध का विरोध करता है और कहता है कि **सर्वश्रेष्ठ विजेता लड़ाई नहीं लड़ता** । लड़ाई मिटाने का भी एक

धर्म है और वह है हृदयपरिवर्तन का धर्म।

च्युअंगत्सी ने लाओत्से के उपदेशों का सबसे अधिक प्रचार किया। जीवन-मरण के सम्बन्ध में उसके विचार गीता के विचार से मिलते हैं। उसका कहना है कि **जैसे ऋतुए बदलती हैं उसी तरह शरीर बदलता है, चोला बदलता है**। इसमें दुख करने जैसी कोई बात नहीं है। कहते है कि जब च्युअंगत्सी की पत्नी का देहांत हुआ तो लोग उसके पास संवेदना प्रकट करने गये। उन्होंने देखा कि च्युअंगत्सी बाजा बजा कर गा रहा था।

च्युअंगत्सी ने भी अपने गुणों का विकास करने, वैभव की विलासिता से परे रहने और गरीबी में मस्त रहने पर जोर दिया।

संसार के अन्य महान धर्मो की भाँति ताओ धर्म भी मानता है कि ससार की सारी मानव-जाति एक है। ऊपरी भेद नगण्य है—तुच्छ है। सबके अन्तर मे एक ही तत्व—प्रेम का तत्व—झलक रहा है।

● धर्म ईश्वर-प्रेम एवं मानव-प्रेम के अतिरिक्त कुछ नही। ●

—विलियम पेन

ईसाई धर्म

आम आदमी का मुक्तिदाता

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व आधुनिक इजरायल के एक छोटे से गांव बेतलहम में एक शिशु ने जन्म लिया। उस समय के वहां के स्वार्थी और क्रूर राजा हिरोद को किसी प्रकार यह ज्ञात हो गया कि एक दैवी शक्ति का आविर्भाव हुआ है और अत्यंत भयभीत हो उसने सारे नवजात शिशुओं की हत्या करने का आदेश दे दिया। लेकिन जीसस के पिता जोसेफ, जो एक बढ़ई थे, जीसस और उसकी माता मेरी को ले कर मिस्र भाग जाने में सफल हो गये।

राजा हिरोद की मृत्यु के बाद जीसस गैलीली और उसके बाद नजारथ चले आये। जोर्डन में उनका बपतिस्मा हुआ।

कहा जाता है कि इसके बाद चालीस दिनों तक जीसस अनवरत चिन्तन और साधना में लगे रहे। इस अवधि में उन्हें किसी ने नहीं देखा। इसके बाद उन्होंने उपदेश देना आरम्भ किया। एक-एक कर उनके बारह प्रसिद्ध अनुयायी बने। जीसस उनके साथ गांव-गांव घूम कर उपदेश देने एवं दीन-दुखियों की सेवा करने लगे। धीरे-धीरे हजारों लोग उनके पास एकत्र होने लगे। जीसस पर स्नेह और प्रेम की वर्षा होने लगी। इन घटनाओं से तत्कालीन निहित स्वार्थ वर्ग के पोषक यहूदी धर्मगुरुओं को ईर्ष्या हुई, जीसस पर झूठे और बेबुनियाद आरोप लगाये गये और अंततः नृशंसतापूर्वक उन्हें शूली पर चढ़ा दिया गया।

ईसा अपने उपदेश में अत्यन्त उदार थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि **जब किसी का हृदय पवित्र होगा तो उसे ईश्वर के साक्षात्कार होंगे और इसे कोई नहीं रोक सकता।** वस्तुतः ईसा ईश्वरत्व की प्रतिमूर्ति थे। **उनमें महामानव की चेतना थी जिसने उन्हें साधारण मनुष्य के सामान्य धरातल से उपर उठा कर ईश्वरत्व की ऊंचाई पर प्रतिष्ठित कर दिया था।**

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि "यदि मैं जीसस की पूजा करना चाहूंगा तो मेरे पास एक ही रास्ता है और वह है ईश्वर क रूप में उनकी पूजा करना।" उन्होंने मानव के अन्तर को ज्योतित किया। वे कहते थे कि जो मेरा अनुगमन करेगा वह कभी अंधकार में गमन नहीं करेगा। तुम सब जो मेहनत करते हो और श्रम के भारी बोझ से दबे हो—आओ, मैं तुम्हें विश्रान्ति दूंगा। जब तक मैं इस विश्व में हूं, मैं विश्व का प्रकाश हूं।

जीसस ने अपने अनुयायियों को कहा– मैं मार्ग हूं, सत्य हूं और जीवन हूं। उन्होंने लोगों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि ईश्वर ने अपने मानव-प्रेम के कारण मुझे तुम्हारे पास भेजा है और तुम मेरे माध्यम से ईश्वर के प्रति उन्मुख हो सकते हो।

स्वर्ग-राज्य का अधिकारी

तत्कालीन समाज में प्रचलित धारणा यह थी कि मनुष्य अपने पापों के कारण दुःख भोगता है। यीशु ने कहा कि मैं ईश्वर की ओर से तुम्हारे पाप क्षमा करने क लिए आया हूं। यीशु ने मनुष्य के सुख के लिए अध्यात्म भावना और भौतिकता में सामंजस्य आवश्यक बतलाया। उन्होंने कहा कि मनुष्य यदि पहले आध्यात्मिकता की खोज करे तो उसे समस्त भौतिक वस्तुएं स्वयं प्राप्त हो जायेंगी।

दि सरमन ऑन दि माउंट में यीशु ने दीन-दुःखियो और गरीबों मे स्वयं को एकात्म करने पर बल देते हुए गरीबों को स्वर्ग-राज्य का अधिकारी कहा है। यीशु गरीबों के सच्चे मसीहा थे। उन्होंने कहा कि जिसने सब कुछ गरीबों को दे नहीं दिया वह मेरा अनुयायी नहीं हो सकता। उन्होंने कहा कि यदि तुम दावत दो तो गरीबों, गूँगों, लंगड़ों और अंधों को आमंत्रित करो–तुम्हें पिता का आशीर्वाद प्राप्त होगा, क्योंकि वे दुखियारे प्राणी तुम्हारे उपकार का बदला नहीं चुका सकते, इसलिये पुनर्जन्म (Resurrection) के समय तुम्हें उचित मुआवजा मिलेगा। उन्होंने कहा कि सत्य और न्याय की प्रतिष्ठा के लिये जो भूखे और प्यासे रहते हैं और प्रताड़ित किये जाते हैं उन्हें स्वर्ग का राज्य मिलता है। अतः **स्वयं भूखे रह कर भूखों के साथ रोटी की तलाश करो।** ईश्वर की दया उन्हें प्राप्त होती है जो दयावान हैं। जिनका

हृदय पवित्र है वे ईश्वर के दर्शन करते हैं। जो शांतिकामी हैं वे ईश्वर-पुत्र हैं। **तुम्हारे सुकृत्यों का प्रकाश मनुष्य में प्रकाशित हो।**

मानव व्यवहार

ईसा ने कहा कि किसी से घृणा मत करो। अपने शत्रुओं, जो कि तुम्हारी निंदा करते हों और तुमसे घृणा करते हों, से प्यार करो और जो तुम्हें प्रताड़ित करते हैं उनके लिये प्रार्थना करो। इस प्रकार ईसा ने घृणा और वैर को प्रेम से जीतने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि समाज के निम्न वर्ग को सुखी करके ही अपने सुख की आकांक्षा करो।

ईसा के अच्छाई की प्रेरणा देनेवाले वचन बड़े आत्मप्रेरक हैं। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि शरीर की रोशनी आंख है—नजर। इसलिये **यदि तुम्हारी नजर बुरी है तो सारा शरीर अंधेरे का घर है।** प्रत्येक सुंदर वृक्ष सुंदर फल देता है और विषैला पेड़ विषाक्त फल। तात्पर्य, यह कि अपने फलों से ही तुम जाने जाओगे। एक सज्जन प्राणी अपने में स्थित अच्छाइयों के कोष से वही बाहर निकालता है जो अच्छा है, श्रेय है और बुरे आदमी के हृदय से बुरी चीजें ही निकलती हैं; क्योंकि दिल के अंदर जिस चीज की प्रचुरता है वही तो बाहर आती है। इसलिये यीशु ने मनुष्य को हृदय से अच्छा बनने पर जोर दिया।

यीशु के मानव-व्यवहार संबंधी सारे वचनों का सार उनके इस एक सरल वाक्य में दिया जा सकता है—**तुम जैसा व्यवहार दूसरों से अपने प्रति चाहते हो वैसा ही दूसरों के प्रति भी करो।** यीशु ने कहा कि सुख वैयक्तिक वस्तु नहीं है। यदि तुम्हारा पड़ोसी दुखी है तो तुम सुखी नहीं रह सकते। इस प्रकार उन्होंने पड़ोसियों

के प्रेम को अत्यंत महत्व दिया। कमांडमेंट्स (Commandments) में उनके वचन हैं कि इससे बड़ा ईश्वरादेश दूसरा नहीं है।

किसी ने यीशु से पूछा कि ईश्वरादेश क्या है? यीशु ने उत्तर दिया—हत्या मत करो, मिलावट मत करो, चोरी मत करो और झूठी गवाही मत दो। यदि तुम पूर्ण होना चाहते हो तो जो कुछ तुम्हारे पास है वह सब बेच कर गरीबों को दे दो। फिर तो तुम्हें स्वर्ग का खजाना प्राप्त हो जायेगा। **ऊंट का सुई के छेद में से पार कर जाना एक धनवान का ईश्वर के राज्य में प्रवेश करने की अपेक्षा कहीं आसान है।**

यीशु ने कमांडमेंट्स में कहा कि ये आदेश मुझे तुम तक पहुंचाने के लिये परमपिता से प्राप्त हुए हैं और ईश्वर का आदेश है कि एक दूसरे को प्यार करो।

धर्म और धर्मगुरु

यीशु ने कहा कि मनुष्य को धर्म-व्यवस्था का बोझ नहीं, धर्म-ज्ञान चाहिए; धर्म चाहिए, धर्मगुरु नही। यीशु ने धर्म के नाम पर चलनेवाले व्यापार, क्रय-विक्रय, पशु-पक्षियों की बलि चढ़ाने इत्यादि की तीव्र आलोचना की। उन्होंने कहा कि इन धर्मगुरुओं ने ईश्वर के घर को प्रार्थना का घर नहीं बल्कि डाकुओं का अड्डा बना डाला है। इस प्रकार यीशु ने धर्म के नाम पर प्रचलित पाखण्ड और शोषण के विरुद्ध मानव की सामूहिक चेतना को जगाया और धर्म का सीधा-सादा सरल मार्ग दिखाया—दया, प्रेम, भाईचारे और समता का मार्ग—जो सब धर्मों का सार है। उन्होंने कहा कि **ईश्वर का प्रेम आम आदमी तक पहुंचना चाहिये।** उन्होंने कहा कि जो सत्य के प्रति अंधे हैं उन्हें दृष्टि प्राप्त करने

शोषितों, दलितों को स्वतंत्रता प्राप्त करने और धर्म की रूढ़ियों में जकड़े बंदियों को मुक्ति का संदेश देने के लिए ईश्वर ने मुझको नियुक्त किया है।

...और, जैसा कि होता आया है, ईसा को अपने इन क्रांतिकारी वचनों के कारण अपना बलिदान दे देना पड़ा। सलीब पर लटकाये जाने के समय जीसस के मुंह से ये शब्द निकले—हे पिता, उन्हें क्षमा कर दो, क्योंकि वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।

आत्मा की आवाज

ईसा के वचनों को पढ़ने से लगता है कि वे एकदम आज ही दिये गये हैं, क्योंकि **ईसा की आवाज सिर्फ आत्मा की आवाज थी और आत्मा की आवाज देश-काल की तरंगों को लांघ कर मानव-आत्मा से एकत्व स्थापित करती है।** आत्मा की इसी आवाज ने ईसा को संसार के सबसे बड़े मुक्तिदाताओं के आसन पर प्रतिष्ठित किया और ईसाई धर्म विश्वजनीन धर्म हो गया।

● यीशु ईश्वर के राज्य को इस पृथ्वी के और निकट लाये; मगर उन्हें गलत समझा गया और हमारे बीच ईश्वर के राज्य के बजाय पादरियों का राज्य स्थापित हो गया। ●

—इर्मन्युएल कांट

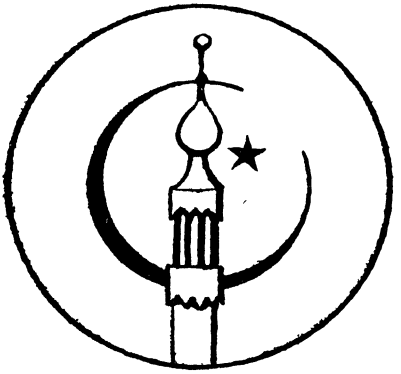

इसलाम धर्म

खुदा का नूर

इसलाम का अर्थ है शांतिप्रियता और अपने आपको संपूर्ण रूप से परमात्मा की इच्छा पर छोड़ देना। सिर्फ एक अल्लाह ही इबादत के लायक है और उसकी हरएक इच्छा हमें शिरोधार्य है। जो इस सिद्धान्त को मानता है वह मुसलमान है। मुसलमान होने के लिए इसलाम की निम्न पांच मौलिक निष्ठाओं पर विश्वास करना–ईमान लाना–अनिवार्य है :

(१) अल्लाह पर ईमान

अल्लाह एक है। वह निराकार है। वही हमारा उपास्य,

स्वामी और शासक है। हमें सिर्फ उसी की बंदगी और इबादत करनी चाहिए। अल्लाह के अतिरिक्त कोई इलाह (पूज्य प्रभु) नहीं। उसके सिवा कोई हमारी साधना और क्रियाओं का केन्द्र या लक्ष्य नहीं बन सकता।

(२) अल्लाह की किताबों पर ईमान – कुरान शरीफ

कुरान शरीफ अल्लाह ने पैगम्बर द्वारा पैगाम भेजा है– यह किताब अल्लाह की राह बतलाती है। कुरान अल्लाह के नूर को दर्शाने के लिए आविर्भूत हुआ है। कुरान का विषय मनुष्य है– इस अर्थ में कि इसमें मनुष्य के हित और अहित की बातें विस्तार से बतलायी गयी हैं। कुरान के आविर्भाव के सम्बन्ध में कहा गया है कि अल्लाह ने अरब के नगर मक्का में अपने एक दास– हजरत मुहम्मद––को पैगम्बरी की खिदमत के लिए चुना और उन्हें आदेश दिया कि वह अपने कबीले से सन्देश पहुंचाने की शुरुआत करें। इस प्रकार कुरान मुहम्मद साहब पर आह्वान के रूप में उतरना शुरू हुआ और तेईस साल तक विभिन्न परिस्थितियों एवं मंजिलों की आवश्यकता के अनुसार कुरान के विभिन्न अंश उतरते गये।

इसलाम धर्म के अनुयायी यह मानते हैं कि मानव इतिहास में कोई दूसरी चीज ऐसी नहीं पायी जाती जो इतनी प्रामाणिक हो जितनी कुरान। इसके सम्बन्ध में कहा गया है–"कुरान के पाठ में यह आध्यात्मिक प्रभाव पाया जाता है कि उससे दिल में इत्मीनान और शांति का अवतरण होता है। सन्देह और हर प्रकार की खटक दूर हो जाती है। शैतान के हस्तक्षेप से आदमी बच जाता है। कुरान एक ऐसा प्रकाश है जिससे दिलों के सभी गोशे प्रकाशित हो जाते हैं। अन्धकार लेशमात्र को भी शेष नहीं

रहता। दिल की बेचैनी दूर हो जाती है। ईमान में दृढ़ता और निखार आ जाता है। फिर आदमी को सच्चाई के लिए प्राण तक देने में कोई झिझक नहीं होती। अल्लाह के मार्ग में चलने ही में उसके दिल को शान्ति और ठंडक मिलती है।"

हदीस–इसमें मुहम्मद साहब की कही हुई बातों का जिक्र है। इसलाम में कुरान के बाद इस ग्रंथ को सबसे अधिक मौलिक महत्त्व प्राप्त है। इसमें इसलाम एक पूर्ण जीवन-दर्शन एवं जीवन-व्यवस्था के रूप में उभर कर सामने आता है।

(३) फरिश्तों पर ईमान

फरिश्ते अल्लाह के रसूल के पास अल्लाह का संदेश लाते हैं और इंसान के कामों का लेखा-जोखा रखते हैं। इसलाम में फरिश्तों पर ईमान लाना आवश्यक माना गया है। ये फरिश्ते एकदम पाक हैं और अल्लाह के हुक्म के बंदे हैं।

(४) रसूलों पर ईमान

रसूल या पैगम्बर अल्लाह के संदेशवाहक होते हैं। इन पर ईमान लाना इसलाम में जरूरी माना गया है। रसूल पर ईमान लाने का अर्थ है कि जिस संदेश या शिक्षा को ले कर रसूल आये हैं, आदमी अपनी आकांक्षाओं को उसके अनुकूल बनाये। इसके लिये मन की शुद्धता और तदनुकूल जीवन-यापन आवश्यक है।

हजरत मुहम्मद अल्लाह के अंतिम नबी हैं। ये सारे संसार को सीधा मार्ग दिखाने के लिये अल्लाह की ओर से भेजे गये। **हजरत मुहम्मद कहते हैं कि मेरी नुबूवत किसी विशेष रंग और नस्ल की जाति के लिए नहीं है।** किस काम से अल्लाह खुश होते हैं और किस काम से नहीं–यही बताने के लिये अल्लाह ने रसूल को भेजा।

(५) आखिरत पर ईमान

आखिरत क्या है? आखिरत वह जीवन है जो मरने के बाद मनुष्य को प्रदान किया जायेगा। अल्लाह सारी दुनिया को मिटा देगा–कयामत कर देगा–और फिर सब को नया जीवन प्रदान करेगा। कयामत के बाद सब लोग अल्लाह के सामने हाजिर होंगे जिसे हश्र कहा जाता है। हश्र में मनुष्य से उसके कामों का हिसाब लिया जायेगा और कर्म के अनुसार परिणाम निश्चित किया जायेगा। इसके पीछे भावना यह है कि जालिम को उसके जुल्म की सजा मिले और सज्जनों को उसका समुचित पुरस्कार मिले।

अल्लाह के लिये यह कोई मुश्किल बात नहीं है कि इस संसार को तोड़-फोड़ कर नष्ट कर दे और इसके पश्चात एक नये लोक का निर्माण करे और मनुष्य को उसके कर्मों के अनुसार नया जीवन प्रदान करे। अच्छे लोगों को जन्नत में दाखिल करे और बुरे लोग को जहन्नम नसीब हो।

इस प्रकार आखिरत की धारणा का मनुष्य के नैतिक एवं व्यावहारिक जीवन से गहरा संबंध है और जो आखिरत पर ईमान लाता है और इस पर विश्वास करता है वही मुस्लिम है–वही ईमानवाला है।

सदाचार

इसलाम में सदाचार पर बहुत जोर दिया गया है। भूखों को खाना खिलाना चाहिए। बीमार की सेवा करनी चाहिए। सताये हुए की मदद करनी चाहिए। मीठा बोलना चाहिए जिससे किसी को चोट न पहुंचे अन्यथा चुप ही रहना चाहिये। वह पूरा

मुसलमान नही है जो खुद तो खूब खाता है और पड़ोसी को भूखा छोड़ देता है।

इसलाम धर्म में कहा गया है कि **ईश्वर स्वयं सौम्य है और सौम्यता से उसे प्यार है। जिसके मन में सरसों के एक दाने के बराबर भी घमंड है वह जन्नत में प्रवेश नहीं कर सकता।** यदि तुम अपने स्रष्टा को प्यार करते हो तो पहले अपने साथ के लोगों को प्यार करो। **जो इंसान के प्रति शुक्रगुजार नहीं है वह अल्लाह के प्रति भी शुक्रगुजार नहीं है।**

क्रोध हरगिज मत करो। खयानत मत करो।

मोमिन प्रेम का पुतला होता है। सब के साथ प्रेम करो और सब के साथ एहसान करो–सब पर रहम करो – जानवरों और पशु-पक्षियों पर भी।

इंसान की कौम एक है। अतः सबसे नेकी करो। अल्लाह सब्र करनेवालों से मुहब्बत रखता है। कोई खता करे तो दर-गुजर करो और बख्श दो। अल्लाह बख्शनेवाला और रहम करनेवाला है।

तुम्हारी कथनी और करनी में भेद न हो। मां-बाप की खिद-मत करो। फुजूलखर्ची न करो। लालच मत करो, ईमान की रोटी खाओ। सूद न लो। शराब और जुआ छोड़ दो। जालिम का साथ न दो। मेहनत-मजदूरी करो। औरतों की इज्जत करो, विधवाओं और गरीबों की खिदमत करो। चापलूसी और चुगली मत करो।

इल्म

जो अपने आप को जानता है वह ईश्वर को जानता है। रात

भर इबादत करने की अपेक्षा कहीं बेहतर है एक घंटा इल्म की शिक्षा देना, इल्म (भगवत ज्ञान) हासिल करना प्रत्येक मुस्लिम स्त्री-पुरुष का कर्तव्य है। इल्म उचित-अनुचित का निर्णय करने की क्षमता प्रदान करता है, बहिस्त का पथ प्रकाशित करता है। यह रेगिस्तान में हमारा दोस्त है, एकाकीपन में हमारा समाज है, जब एक भी मित्र नहीं हो तो इल्म हमारा साथी है और शत्रुओं के विरुद्ध कवच है।

जो शख्स मुसलमान है उसके लिए लाजिम है कि दिन-रात के चौबीस घंटों में सिर्फ एक घंटा दीन का इल्म सीखने में खर्च करे। **खुदा की नजर में इंसान और इंसान में जो भी फर्क है वह इल्म और अमल के ही कारण है।** मुसलमान को काफिर से अलग करनेवाली सिर्फ दो चीजें हैं– एक इल्म, दूसरा अमल। **इसलाम पहले इल्म का नाम है और उसके बाद अमल का।** मुसलमान दरअसल वह है जो इसलाम को जानता हो और फिर एतकाद रखकर उसको मानता हो।

चार इबादतें

इसलाम में चार इबादतें बतायी गयी है––

१. नमाज– हर मुसलमान पांचों वक्त नमाज कायम करे।

२. रोजा– रमजान के महीने में महीने भर रोजा रखे।

३. खैरात– कम-से-कम ढाई फीसदी सालाना खैरात करे। सबसे अच्छी खैरात वह बतायी गयी है जिसमें **दायां हाथ खैरात करे तो बायें हाथ को उसका कुछ पता भी न हो।** खैरात दिल से दी जानी चाहिए। **सबसे अच्छी खैरात वह है जो गरीब अपनी मेहनत की कमाई में से अपनी औकात के मुताबिक देता है।**

इसलाम में नमाज के बाद जकात की अहमियत सबसे बढ़कर है। जकात का मतलब है पाकी और सफाई। जो आदमी खुदा की दी हुई दौलत में से खुदा के बन्दों का हक नहीं निकालता, उसका माल नापाक है और माल के साथ उसका नफ्श भी नापाक है।

४. हज—मुसलमान को जीवन में एक बार हज करनी चाहिए —मक्का, खान-ए-काबा की जियारत करे। कुरान में बयान किया है— "यकीनन पहला घर जो लोगों के लिए मुकर्रर किया गया, वही था जो मक्का में बना, बरकतवाला घर और तमाम दुनियावालों के लिये हिदायत का मर्कज। इसमें अल्लाह की खुली हुई निशानियां हैं, इब्राहीम की जगह है और जो इसमें दाखिल हो जाता है उसको शांति मिल जाती है।"

● मोमिन प्रेम एवं स्नेह का आगार होता है। उस व्यक्ति में कोई भलाई नहीं जो न किसी से प्रेम करे और न जिससे कोई प्रेम करे। ●

—अहमद बैहकी-शोबुलईमान

सिख धर्म

आज्ञा भई अकाल की

सिख धर्म के आदि स्रष्टा गुरु नानकदेव हैं और इसे एक संगठित रूप दिया गुरु गोविन्द सिंह ने। गुरु गोविन्द सिंह अंतिम गुरु थे। उन्होंने इस भक्ति-सम्प्रदाय में पुरुषार्थ भर दिया और इसे शूरवीरों की सेना का रूप दे दिया।

लेकिन सिख गुरुओं की सब से बड़ी महत्ता तो है मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद की दीवार खड़ी करनेवाले वर्णवाद एवं अन्य नीच-ऊंच सम्बंधी मान्यताओं को समाप्त कर मानव के ऊंचा उठने का मार्ग प्रशस्त करने में। इसके लिये उन्होंने अनेक प्रकार की प्रचलित रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का खण्डन किया और सब से ऊपर चरित्र-बल, पुरुषार्थ एवं प्रेम की महत्ता प्रतिपादित की। यह कार्य सिख गुरुओं ने कोरे उपदेशों, मंत्रों एवं वानियों द्वारा करने की चेष्टा नहीं की, बल्कि स्वयं अपने आचरण एवं वलिदान द्वारा ऐसी सामूहिक आत्मशक्ति उत्पन्न की जिससे एक पूर्णतः समर्पित व्यक्ति एक हजार पर भारी पड़ता है। इसी लक्ष्य की ओर इंगित करते हुए गुरु गोविन्द सिह ने कहा–

तीतर से जब बाज लड़ाऊं,
सवा लाख पर एक चढ़ाऊं।

अपने उक्त लक्ष्य की पूर्ति के लिये गुरु गोविन्द सिह ने पांच पुरुषों के बलिदान द्वारा खालसा समुदाय की सृष्टि की। डा० जसवन्त सिंह ने लिखा है कि यह सिखों को एक सुदृढ एवं महान वज्रीभूत जाति वना देने का अद्भुत प्रयोग था।

भारत की धार्मिक एवं सामाजिक दशा अच्छी नही थी। विभिन्न फिरकों एवं धर्मावलम्बियों के बीच घोर वैमनस्य था और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जातिगत विकृतियों ने समाज को दुर्बल बना दिया था। आध्यात्मिक जीवन का ह्रास हो गया था। तत्कालीन राजनीतिक सत्ता का भी विभिन्न धर्मों की स्वतंत्रता में विश्वास नहीं था। गुरु नानक ने तत्कालीन परि-

स्थिति का वर्णन इस रूप में किया है :

कूड़ अमावस सच्च चन्द्रमा दीसे नाहीं कहि चढ़िया ।

ऐसी ही परिस्थिति में गुरु नानक का आविर्भाव हुआ और उन्होंने मानव-एकता एवं विश्वप्रेम की सच्ची अलख जगायी । उन्होंने कहा कि ईश्वर एक है, ईश्वर प्रेम है और ईश्वर नाम है एकता का । एक ही ईश्वर मन्दिर में है और मस्जिद में भी और मन्दिर-मस्जिद के बाहर भी । ईश्वर में निष्ठा और मानवता की सेवा, बिना किसी प्रकार के भेदभाव के, सभी मनुष्य का कर्तव्य है ।

गुरु नानक (१४६९–१५३९ ई.)

गुरु नानक का जन्म १५ अप्रैल सन् १४६९ ई. को हुआ । वे बचपन से ही बड़े शान्त स्वभाव के थे। एकान्त में बैठकर कुछ सोचते रहना उन्हें प्रिय था। धीरे-धीरे उनके प्रत्येक कार्य में उनके साधु स्वभाव एवं भगवत्प्रेम की झलक मिलने लगी । स्कूली शिक्षा के प्रति भी उनकी यह धारणा हो गयी कि परमात्म-ज्ञान के बिना सब सांसारिक विद्याएं व्यर्थ है । व्यापार-धंधे में पिता ने मन लगाना चाहा तो वहां 'सच्चा सौदा' की खोज करने लगे ।

नानक जी का विवाह करा दिया गया, दो पुत्र उत्पन्न हुए किन्तु उन्हें तो अंतःप्रकाश प्राप्त हो चुका था और उसकी तेजस्विता अपनी किरणें बिखरने लगी थी। वे नानक से गुरु नानक माने जाने लगे ।

गुरु नानक की चार यात्राएँ प्रसिद्ध हैं। अपनी दूसरी यात्रा में ये बिलोचिस्तान होते हुए मक्का पहुंचे थे। यहां उन्होंने एक दिशा की ओर मुख करके सर्वव्यापी परमात्मा की नमाज पढ़ने का खण्डन किया था । फिर गुरु नानक मदीना, रूस, बगदाद, ईरान, कंधार और काबुल होते हुए स्वदेश लौटे । जहां-जहां गये वहां पवित्रता,

प्रेम, विनम्रता, भक्ति, शान्ति, न्याय एवं समता का प्रचार किया। उन्होंने कहा कि ईश्वर एक है, सबसे ऊपर है और सबका कर्तार है।

चालीस वर्ष की अवस्था में नानक सद्गुरु के रूप में मान्य हो गये। उन्होंने कहा कि ईश्वर की इच्छा को अपनी इच्छा बना लेना ही उसको प्राप्त करने का साधन है। संसार की प्रत्येक वस्तु उसकी इच्छा की प्रतिभूति है। अकूत धनराशि एवं साम्राज्य के अधिकारी सम्राट की भी तुलना ईश्वर- प्रेम से भरी एक नन्हीं चींटी से नहीं की जा सकती।

ईश्वर को जानने के लिये गुरु नानक ने 'शबद' की महत्ता बतलायी। 'शबद' तमाम प्रकार के पापों, ऐषणाओं और दुखों का नाश करता है। 'शबद' कर्त्तार के नाम को प्रकट करता है। 'शबद' ही गुरु है, गुरु ही 'शबद' है।

केवल कर्तार का नाम बकने से उसका अनुभव नहीं किया जा सकता, जब गुरु कृपा से परमात्मा की हमारे अन्दर प्रविष्टि होती है, तभी फल की प्राप्ति होती है।

गुरु नानक ने कहा कि अपने हृदय को किसान मानो, शरीर को खेत बनाओ, मधुर वाणी ही खेत की मिट्टी होगी, अपने सत्कर्मों का बीज इसमें डालो और इस खेत को नाम के जल से सींचो। तभी तुम्हारे हृदय में ईश्वर अंकुरित होगा और तुम निर्वाण-पद की प्राप्ति करोगे।

सेवा ही तुम्हारा ध्यान हो, बुराइयों पर नियन्त्रण तुम्हारा उद्यम और नाम में आस्था ही तुम्हारा व्यवसाय हो।

गुरु नानक की वाणियों का समूह पंचम गुरु अर्जुनदेव ने गुरु ग्रन्थ साहिब में संकलित किया। जपुजी, पट्टी, आरती, ओंकार, सिद्धगोष्ठि आदि इनकी प्रसिद्ध वणियां हैं।

गुरु अंगद (१५०४–१५५२ ई.)

गुरु अंगद का पहला नाम भाई लहणा था। १५३२ ई. में इनकी भेंट गुरु नानक से कर्त्तारपुर में हुई और वे उनके अनन्य शिष्य हो गये। उन्होंने ही इनका लहणा नाम बदल कर अंगद रखा और गुरु की गद्दी पर बिठाया। इन्होंने गुरु नानक के कार्य को बड़ी खुशी से संभाला और सर्वप्रथम उनके शब्दों का संकलन करके उनके सिद्धान्तों का प्रचार आरंभ कर दिया। गुरु नानक जी की वाणियों का संकलन करने के लिए इन्होंने ही 'गुरुमुखी' लिपि का निर्माण किया।

गुरु अमरदास (१४७९–१५७४ ई.)

तीसरे गुरु अमरदास साठ साल की आयु तक अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सके थे। एक दिन अचानक उनके कानों में अपनी पुत्रवधू अमरो, जो गुरु अंगद की पुत्री थी, के मुख से गुरु नानक के 'शबदों' की मधुर वाणी पड़ी और वे गुरु अंगद के शिष्य हो गये। यह घटना १५४० ई. की है। इन्होंने वृद्धावस्था में भी बारह वर्ष तक गुरु की कठिन सेवा की और गुरु अंगद ने इन्हें गुरु-पद प्रदान किया।

गुरु अमरदास ने सिख धर्म के प्रचार के लिये विभिन्न देशों में बाईस केंद्र स्थापित किये। 'आनन्द' इनकी मुख्य वाणियों में एक है।

गुरु रामदास (१५३४–१५८१ ई.)

आप गुरु अमरदास जी के दामाद थे। विवाह के पश्चात ये अपनी आध्यात्मिक निष्ठा को सुदृढ़ बनाने के लिए सेवा कार्य में जुट गये। इनके हृदय में श्रद्धा, प्रेम और भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित होने लगी। इन्होंने अकबर के दरबार मे जा कर जातिगत भेदभाव का खण्डन करते हुए मनुष्यमात्र की एक जाति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिससे अकबर अत्यंत प्रभावित हुआ था। अमृतसर के सरोवर की खुदाई इन्होंने ही आरंभ की थी। इसके पश्चात सरोवर को पूरा करने के लिये अनेक सिखों के साथ स्वयं वहाँ आ कर बस गये। अमृतसर नगर इन्होंने ही बसाया। ये विख्यात हो गये और दूर-दूर से दर्शनार्थ आनेवाले प्रेमी संतों की आध्यात्मिक जिज्ञासा को तृप्त करने लगे।

गुरु अर्जुन (१५६३–१६०६ ई)

गुरु अर्जुन गुरु रामदास जी के कनिष्ठ पुत्र थे। सिखों की आय का दशांश धर्म-कार्यों में लगाने की प्रथा इन्होंने ही चलायी। अमृतसर में हरमन्दिर, जो आजकल स्वर्ण-मन्दिर के नाम से विख्यात है, की नींव इन्होंने ही डाली। गुरु अर्जुन ने ही अपने पूर्व के गुरुओं, अपनी तथा कुछ अन्य भक्तों की रचनाओं का संकलन कर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का निर्माण कर हरमन्दिर में स्थापित किया। गुरु अर्जुन देव की निष्काम वृत्ति, निर्वैर स्वभाव तथा लोकहित की उत्कट भावना देख कर सम्राट अकबर ने भी इनका लोहा माना था। लेकिन अकबर जैसी श्रद्धा जहांगीर में न थी और जब वह तख्त पर बैठा तो उस पर गुरु अर्जुन को इसलाम

की जमात में दाखिल करने का जुनून सवार हो गया। उसने गुरु अर्जुन को लाहौर में पकड़वा मँगाया और अकल्पनीय प्रताड़ना दे कर मरवा डाला।

गुरु अर्जुन की वानियां शान्ति एवं वैराग्य का अनुपम उदाहरण हैं। 'सुखमनी' इनकी प्रसिद्ध वाणियों में हैं।

गुरु हरिगोविन्द (१५९५–१६४४ ई०)

गुरु हरिगोविन्द गुरु अर्जुन देव के इकलौते पुत्र थे। इन्होंने राजनीति को भी धर्मनीति में स्थान दिया। गुरु अर्जुन की शहादत का अनुभव इन्हें हो गया था और इन्होंने समझ लिया था कि अध्यात्म-बल के साथ शौर्य-बल भी आवश्यक है–धर्म की रक्षा के लिये तलवार की जरूरत है और इन्होंने सिखों को शस्त्र धारण करने की आज्ञा दी। गुरु हरिगोविन्द स्वयं दो खड्ग धारण किया करते थे। एक पीरी (धर्मनीति) और दूसरी मीरी (राज्यनीति) के लिये।

जहांगीर ने गुरु हरिगोविन्द को ग्वालियर के दुर्ग में १२ वर्ष तक कैद कर रखा था। लेकिन बाद में जब जहांगीर को सचाई का पता लगा तो उसने गुरु का बड़ा सम्मान किया। कहते हैं, बेगम नूरजहां ने भी भक्तिभावपूर्वक गुरु महाराज के दर्शन किये थे। हजारों मुसलमान भी इनके शिष्य हुए थे। इन्होंने कई सरोवर बनवाये। हरिगोविन्दपुर नगर बसाया।

लेकिन जहांगीर की मैत्री का निर्वाह शाहजहां नहीं कर सका और सिखों से उसकी ठन गयी। गुरु हरिगोविन्द जी को शाहजहां की सेना के साथ तीन युद्ध करने पड़े।

गुरु हरिगोविन्द ने दूर-दूर तक सिख धर्म का प्रसार किया। देशविदेश में उदासी प्रचारक भेजे।

गुरु हरिराय (१६३०–१६६१ ई०)

एक बार गुरु हरिराय के प्रसाद से शाहजहां के पुत्र दाराशिकोह की जान बच गयी थी और तब से वह इनका भक्त बन गया था। एक बार इन्होंने दारा को औरंगजेब के हाथ में पड़ने से भी बचाया था। हरिराय ने स्वयं ग्रामों और कस्बों में घूम-घूम कर, दूर-दूर तक सिख धर्म का बड़ी धूम-धाम से प्रचार किया। इन्होंने अपने शिष्यों को पूर्व के देशों में भी सिख धर्म का प्रचार करने के लिये भेजा।

गुरु हरिकृष्ण (१६५६–१६६४ ई०)

गुरु हरिराय के सुपुत्र गुरु हरिकृष्णजी को केवल सवा पांच वर्ष की अवस्था में गुरु की गद्दी संभालनी पड़ी, लेकिन इतनी अल्पायु में अपनी कार्यक्षमता एवं उपदेश-कुशलता से इन्होंने लोगों का मन मोह लिया। इनके बड़े भाई द्वारा कान भरे जाने पर औरंगजेब ने इन्हें दिल्ली बुला भेजा। इनके आध्यात्मिक विचारों का कायल औरंगजेब को भी होना पड़ा। राजा जयसिंह ने भी इनकी आध्यात्मिक शक्ति की परीक्षा ली थी और अंततः अपनी रानियोंसहित उसे इनके आगे नतमस्तक होना पड़ा था।

गुरु तेगबहादुर (१६२१–१६७५ ई.)

बलिदानी गुरुओं की परम्परा में गुरु तेगबहादुर का नाम सिख जगत का मुख्य प्रेरणा स्रोत रहा है। आप गुरु हरिगोविन्द जी के

सुपुत्र थे। ये बड़े धीर, निस्पृह एवं क्षमाशील थे। इन्होंने आनन्द-पुर नामक नगर बसाया। धर्म-प्रचार के लिए अनेक ग्राम-नगरों और तीर्थों में घूमते हुए आप असम तक पहुचे थे। असम जाते हुए इन्होंने पटना में अपने परिवार को रख दिया था जहां गोविद राय (गुरु गोविद सिंह) का जन्म हुआ। गोविन्द राय ने मात्र नौ वर्ष की अवस्था में औरगजेब के अत्याचारों से पीड़ित जाति के रक्षार्थ अपने पिता को बलिदान की प्रेरणा दी थी। औरंगजेब ने गुरु तेगवहादुर को दिल्ली बुलवाकर इनका सिर कटवा डाला था।

गुरु गोविन्द सिंह (१६६६–१७०८)

पिता गुरु तेगबहादुर इन्हे नौ वर्ष की अवस्था में छोड़ कर शहीद हो गये, लेकिन इसी अवस्था से इनमें अद्भुत सगठन-क्षमता, दृढ़ सकल्प, शस्त्र और शास्त्र-प्रेम की झलक मिलने लगी। इन्होने '**हिन्दू-तुरक ते आहि नियारा**' 'सिंह धर्म' धारण करने का आह्वान किया। इसी आह्वान पर गुरु गोविन्द सिंह ने 'खालसा' का संगठन किया जिसे क्रमश: लाखों नर-नारियों ने अंगीकार किया।

गुरु गोविंद सिंह को बड़े-बड़े संकट झेलने पड़े। पहाड़ी राजाओ से और औरगजेब की विशाल सेना से लोहा लेना पड़ा। सरहिन्द के नवाब ने इनके दो पुत्रों को जिन्दा दीवार में चुनवा दिया। शेष दो पुत्रों ने चमकौर ग्राम में लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की। इस युद्ध में आप अपने मात्र चालीस सिखों के साथ मौजूद थे।

गुरु गोविद सिंह ने औरंगजेब को 'जफरनामा' लिख कर भेजा था। कहते हैं इसे पढ़ कर औरंगजेब को अपने कृत्यों पर घोर मानसिक क्लेश हुआ था। औरंगजेब के मरने के वाद

वहादुरशाह बादशाह हुआ। वह गुरु गोविंद सिंह का भक्त था। लेकिन सरहिन्द के नवाब के भेजे दो पठानों ने इनका भक्त बनने का स्वांग किया और घात लगा कर इनके पेट में जमधर भोंक दिया। घाव भरने भी नहीं पाया था कि एक कमान को खींचते हुए इनके घाव के टांके टूट गये और इस प्रकार एक महान धर्म-गुरु एवं युग-पुरुष का अंत हो गया। उनकी नीतिनिपुणता और दूर-दर्शिता का अमिट प्रमाण सिखों को दिया हुआ उनका वह अन्तिम आदेश है जिसमें उन्होंने कहा कि मेरे पीछे अब और कोई व्यक्तिगत गुरु न होगा, केवल ग्रथ साहिब ही गुरु होंगे :

आज्ञा भई अकाल की, तभी चलायो पथ।
सब सिक्खन को हुकम है, गुरू मानयो ग्रन्थ ॥
गुरू ग्रन्थ मानयहु प्रकट गुरों की देहि।
जाका हिरदा शुद्ध है खोज शब्द में लेहि ॥

महान योद्धा होने के साथ गुरु गोविन्द सिंह निपुण कवि भी थे।

अद्वितीय धार्मिक नेता

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिख धर्म ने एक व्यापक मानव-धर्म का रूप लिया और सभी मतों-सम्प्रदायों एवं भौगोलिक सीमाओं को लांघ कर देश-देशान्तर में सत्य, प्रेम, सदाचार, त्याग, बलिदान एवं मानवीय एकता का संदेश दिया। व्यापक धर्म का यह स्वरूप गुरु नानक ने ही प्रस्तुत कर दिया था। वे हिन्दू, जैन, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई आदि धर्मों के केन्द्र में पहुचे और उन्होंने अपने आध्यात्मिक ज्ञान से उन्हें धर्म के सीधे-सादे-सच्चे मार्ग पर लगाया। आज भी हरमन्दिर सभी धर्मों के लोगों के लिये खुला है।

सिख मत के ये दस गुरु आध्यात्मिक आकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं और सिख मत में दसों गुरुओं को एक ही ज्योति माना जाता है। इन्होंने समर्पण, सेवा एवं पुरुषार्थ का अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया। गुरुमत में नम्रता एवं विनयशीलता को सर्वश्रेष्ठ गुण माना गया है। इन गुरुओं ने सर्वत्र एक ही सर्वशक्तिमान की महिमा प्रतिपादित की, सदाचार की प्रेरणा दी तथा जीवमात्र से प्रेम करने का आदेश दिया।

सिख गुरुओं ने असंख्य जीवों को शान्ति, वीरता एवं आत्मोत्सर्ग की शिक्षा दी। ये गुरु संसार के इतिहास में अद्वितीय धार्मिक नेता हुए। इन्होंने समस्त मानव समाज को उठाया। इन्होंने चारों वर्णों के उत्तम गुणों को एक ही व्यक्ति में समाहित किया।

● जो मनुष्य धर्मशास्त्र पढ़ता है किन्तु उनके अनुसार आचरण नहीं करता वह उस ग्वाले के समान है जो दूसरो की गायों को गिना करता है। ●

—बुद्ध